R.N.I. No. 2321/57
नवम्बर 2023

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2022-24
अंक 10

तपोभूमि

मासिक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

विष को पीकर अमृत बाँटा। तेरा ऋणी रहे संसार।।

(निर्वाण दिवस दीपावली)

सम्पादकीय

आर्यसमाज का प्राण है आर्यवीर दल

आर्यसमाज संगठन में कुछ स्वार्थी तत्वों के प्रवेश के बाद कल्पनातीत शिथिलता आ गई। आर्य संन्यासी केवल नाम मात्र के संन्यासी हैं अन्य सम्पदायों की तरह उन्होंने आर्यसमाज को एक मानव–निर्माण आन्दोलन न समझ कर सम्प्रदाय मात्र समझ लिया है उसके कार्यक्रमों में जाना दक्षिणा लेना और पड़े रहना बस यही उनका जीवन रह गया, उपदेशक पूरी तरह से व्यवसायी हो गया। अब तो उसने वेद प्रचार का कार्य लोभवश त्याग दिया। पौराणिक कथा वाचकों की तरह राम कथा, कृष्ण कथा आदि करने लग गया। बस टका पन्थी बनकर रह गया है। भजनोपदेशक स्वाध्याय विहीन होकर मोबाइल के सहारे गाल बजाकर अपना उल्लू सीधा कर रहा है। धनवान आर्यसमाजी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय आर्य समाज भवनों या आर्यसमाज के विद्यालयों को चलाकर मोटी कमाई में लगा है। संगठन पर ध्यान न देने की वजह से धनलोभी गिद्ध आर्य समाज में घुस कर बैठ गये हैं ऐसे निकृष्ट प्रवृत्ति के लोगों के आने से आर्यसमाज रूपी फलता–फूलता वृक्ष पतझड़ होकर सूखने लगा जिससे संसार की अकथनीय हानि हो रही है यह विषय प्रत्येक आर्य के लिए अत्यन्त शोक के योग्य है।

ऐसी विषमावस्था में एकमात्र आशा की किरण आर्यवीर दल ही है जिसको तथाकथित कब्जा– धारी आर्य कहलाने वाले आर्यसमाजी स्थान भी नहीं देते हैं। इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी आर्यवीर दल के बालक आर्यसमाज के कार्य को निरन्तर आगे ले जा रहे हैं। उनके साहस, धैर्य, कर्मठता की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। इन आर्यवीरों को कई मोर्चों पर लड़ना पड़ता है। प्रथम तो परिवार में ही विरोध होता है क्योंकि अधिकांश आर्यवीर मध्यम परिवारों के होते हैं। घर वाले उनसे आशायें लगाये रहते हैं कि कुछ कमाकर लायेंगे। जिस क्षेत्र में वे काम करते हैं वह क्षेत्र घर फूंक तमाशा देखने का है। अत: प्रथम तो घर में विरोध सहना पड़ता है फिर समाज की वर्त्तमान विषय वासना की आँधी में तिनके की तरह उड़ती नौजवानी को खींच कर नियम संयम के क्षेत्र में लाकर खड़ा करना बड़ा दुरुह कार्य है फिर आर्य समाज की पवित्र विचारधारा समाज में न होने से मिथ्या दोषों से आर्य समाज को बचाकर सच्चा स्वरूप उपस्थित करना अन्य चुनौतियों से कम नहीं है।

अगला मोर्चा उन तथाकथित घाघ बने बैठे ढीठ बुढ्ढों से है जो आर्य समाज के संगठन के पदों पर अपने सिवा किसी को देखना भी नहीं चाहते। ये पापी आर्य समाज को घुन की तरह

शेष पृष्ठ संख्या 35 पर–

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–69 संवत्सर 2080 नवम्बर 2023 अंक 10

*
संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

*
संपादक
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

*
व्यवस्थापक
कन्हैयालाल आर्य
मोबा0 9759804182

*
नवम्बर 2023

*
सृष्टि संवत्
1960853124

*
दयानन्दाब्द: 199

*
प्रकाशक
सत्य प्रकाशन, मथुरा

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4–5
मानव शरीर: कितना अद्भुत...	–योगाचार्य चन्द्रभान गुप्त	6–9
वज्रांगी हनुमान	–ओंकारसिंह विभाकर	10–12
वेद चतुष्टय	–हरिदत्त शास्त्री	13–15
विष–चिकित्सा	–स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	16–19
शिक्षा और अध्यापक	–चिम्मनलाल वैश्य	20–23
कर्म में नीति–अनीति का विचार	–आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री	24–27
आध्यात्मिक चर्चा	–हरिशंकर अग्निहोत्री	28–29
अमल के बिना लोग पीछे नहीं चलते	–हनुमान प्रसाद शर्मा	30
मेल से लाभ	–हनुमान प्रसाद शर्मा	30
आर्यवीर दल उ0 प्र0 के आह्वान पर		31–33
चतुर्वेद पारायण यज्ञ		34

वार्षिक शुल्क 200/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 2100/–

वेदवाणी

लेखकः डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

प्राणिघातक मांसभक्षी के लिए वध–दण्ड का विधान

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥–अथर्व0 8/3/15

शब्दार्थः–

(यः यातुधानः) जो राक्षसः (पौरुषेयेण) पुरुष के (क्रविषा) मांस से (समङ्क्ते) स्वयं को तृप्त करता है, (यः) जो (अश्व्येन क्रविषा) घोड़े के मांस से या (पशुना) किसी अन्य बकरे आदि पशु से (समङ्क्ते) स्वयं को तृप्त करता है, (यः) जो (अघ्न्यायाः) गाय का (क्षीरम्) दूध (भरति) हरता है, (तेषाम्) उन सबके (शीर्षाणि) सिरों को (अग्ने) हे राजन्! (हरसा) तीक्ष्ण तलवार से (अपि वृश्च) काट दो।

भावार्थः–

जो मनुष्य किसी प्राणी का मांस खाता है, वह 'यातुधान' कहलाता है, क्योंकि वह उस प्राणी को यातना देकर उसका वध करके मांस प्राप्त करता है। जो उस प्राणी का स्वयं वध न करके उसका मांस मांसविक्रेता से खरीद कर खाता है, उसे भी यातुधान' कहते हैं, क्योंकि वह उस प्राणी को यातना दिये जाने में निमित्त बनता है। मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है। वह उसकी आँतों में जाकर सड़ता है और मानसिक तथा शारीरिक विकार उत्पन्न करता है।

मन्त्र में पुरुष के, घोड़े के, किसी अन्य पशु के तथा गाय के मांस खाने की चर्चा की गयी है तथा मांसभक्षी के लिए दण्डविधान यह किया गया है कि उसका सिर काट दिया जाये। निरीह पुरुषों की अथवा युद्ध में लड़ते हुए पुरुषों की हत्या या हिंसा करने वाले तो बहुत मनुष्य हैं, किन्तु नर–मांस खानेवाले लोग कम ही मिलेंगे। कुछ पिशाच लोग बच्चों का अपहरण करके उनके मांस से स्वयं को तृप्त करनेवाले आज भी मिल जाते हैं। अश्व का मांस भी कम खाया जाता है। अन्य पशुओं में बकरा–बकरी, शूकर आदि का मांस खाया जाता है। पक्षियों तथा जलजन्तु मछली आदि का मांस बहुत खाया जाता है। गाय आदि पशुओं को बूचड़खानों में काटकर उनका मांस बेचा जाता है और देशान्तर में भेजने के लिए डिब्बों में भी बन्द किया जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी गोकरुणानिधि पुस्तक में गाय, बकरी, भैंस आदि पशुओं पर

तथा सब पक्षियों पर अपनी करुणा बरसायी है तथा मांस-भक्षण का सर्वथा निषेध किया है। उक्त पुस्तक में हिंसक-रक्षक के संवाद द्वारा मांसभक्षण के पक्ष में जो भी युक्तियाँ दी जा सकती हैं उन सबको देकर उनकी काट की गयी है तथा मांस मनुष्य के लिए नितान्त अभक्ष्य घोषित किया गया है। एक गाय का तथा उसकी बछड़ियों का कुल जन्मभर का मिलाकर कितना दूध होता है तथा उससे एक बार में कितने मनुष्य तृप्त हो सकते हैं और एक गाय जो बछड़े जनती है, वे बैल बनकर कितना अन्न उत्पन्न करते हैं तथा उस अन्न को खाकर एक बार में कितने मनुष्य तृप्त होते हैं, इसका हिसाब भी उक्त पुस्तक में स्वामीजी ने लगाया है। निष्कर्ष देते हुए वे लिखते हैं कि "दूध और अन्न को मिलाकर देखने से निश्चय है कि चार लाख दस हजार चार सौ चालीस मनुष्यों का पालन एक बार के भोजन से होता है। और एक गाय के मांस से अनुमान है कि केवल अस्सी मांसाहारी मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं। देखो, तुच्छ लाभ के लिए लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं?" इसी प्रकार एक बकरी और उसकी सन्ततियों से भी कितना लाभ पहुँचता है, इसके भी आँकड़े देकर अन्त में लिखा है– "इसी प्रकार अन्य दूध देने वाले पशुओं के दूध से भी अनेक प्रकार के सुखलाभ होते हैं।"

मन्त्र में गाय के लिए 'अघ्न्या' शब्द प्रयुक्त किया गया है, जिसका अर्थ है 'अहन्तव्य'। कहा गया है कि जो गाय का मांस खाता है, वह गाय के दूध को हरता है अर्थात् लोगों को उसके अमृतुल्य दूध से वंचित करता है। न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि वह मांस के लिए उपयोगी पशु-पक्षियों का वध करने-करानेवाले के लिए मृत्युदण्ड घोषित करे। राजा उस दण्ड को क्रियाचित करवाये, जल्लादों द्वारा खड्ग से उनके सिर कटवा दे। वेद मांसविक्रय के लिए प्राणियों की हत्या करनेवाले के लिए तथा मांसभक्षी के लिए इतने कठोर दण्ड का विधान इसलिए करता है, जिससे मनुष्य इस पाप में लिप्त न हों। ❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वर्ष **2022 तथा 2023** का वार्षिक शुल्क अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। **–व्यवस्थापक**

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

मानव शरीरः कितना अद्भुत कितना अनुपम

लेखकः योगाचार्य चन्द्रभानु गुप्त

आकाश का गुण शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस एवं पृथ्वी का गुण गन्ध है। इसमें भी आकाश में एक ही गुण है शब्द। वायु में शब्द एवं स्पर्श दो गुण तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श रूप, रस गन्ध से पाँच गुण हैं। आकाश का गुण कान से, वायु का त्वचा से, अग्नि का गुण आँख से, जल का जिह्वा से एवं पृथ्वी का गुण नाक से मालूम होता है।

सूर्योदय के समय प्रत्येक अढ़ाई घड़ी तक, एक घण्टा के हिसाब से एक–एक नथुने से प्राणवायु चलता है। बांये या दाहिने नथुने से श्वांस चलते समय, यथाक्रम उपरोक्त पंचतत्वों का उदय होता है। पंचतत्वों के आठ प्रकार के लक्षण हैं। पहला तत्व संख्या, दूसरा श्वांस सन्धि, तीसरा स्वर चिह्न, चौथा स्थान, पांचवाँ तत्व का वर्ण, छठा परिमाण (माप), सातवाँ स्वाद, आठवाँ गति है।

यदि नथुने के बीच से श्वांस–प्रश्वांस आये जाये, पृथ्वी तत्व का उदय होगा, नथुने के नीचे से प्राणवायु चलता है। बांये या दाहिने नथुने से निश्वांस चलने पर जल तत्व का ऊपर से चलने पर अग्नि स्पर्श करते हुए घूमकर निश्वांस वायु चलने से आकाश तत्व का उदय माना जाता है।

यदि मुँह में मीठा स्वाद का अनुभव हो तो पृथ्वी तत्व का कषाय स्वाद से जल तत्व का, पित्त स्वाद से अग्नि तत्व का, अम्ल, खट्टा स्वाद से वायु तत्व का और कड़वे स्वाद से आकाश तत्व का उदय माना जाता है। वायु तत्व का उदय होने से निःश्वांस वायु का परिमाण आठ अंगुल, अग्नि तत्व में चार अंगुल, पृथ्वी तत्व में 12 अंगुल जल तत्व में 16 अंगुल और आकाश तत्व में बीस अंगुल श्वांस की वायु का का परिमाण होता है।

मानव शरीर में जब जिस नाक से श्वांस चलती है, तब उसी क्रम में उपर्युक्त पंचतत्वों का उदय हुआ करता है। इन पंचतत्वों का साधन कर लेने से सब तरह के साधन कार्यों में लाभ होता है और साधक सदा स्वस्थ निरोग रहता है।

ये लाखें चेतनशील प्राणी हैं, इस जगत में। उनकी तुलनात्मक ढंग से यदि विचार किया जाये तो उन लाखों चेतनशील प्राणियों में अनुपात की दृष्टि से मानव शरीर 0.1 प्रतिशत ही है; जबकि अन्य चेतनशील प्राणी की संख्या 99.9 प्रतिशत है। अर्थात् उनके अनुपात में हम बिल्कुल नगण्य हैं। फिर भी ये मानव शरीर सृष्टि का एक आश्चर्यजनक करिश्मा है, पर ये बड़ा ही दुःखद और लज्जाजनक स्थिति में हमें ये मानव समाज दिख रहा है। इस विलक्षण शरीर के माध्यम से हम विलक्षण कार्य भी कर रहे हैं और करने वाले भी हैं। विलक्षण कार्य दो प्रकार के होते हैं। एक कार्य होता है जो सृष्टि को सजा–सँवारकर

सावधानी से रखा जाये, जिसे देखने वाले देखते ही रह जायें। अतः दूसरा कार्य ठीक इसके विपरीत ऐसे–ऐसे विलक्षण कृत्य किये जायें कि केवल मात्र मानव जाति ही विनिष्ट न हो, बल्कि सम्पूर्ण जड़ जंगम ही समाप्त हो जाये, शेष कोई बचे ही नहीं। अब हमें विचार करना है कि दोनों विलक्षण कार्य कैसे हैं, उसमें से हमें किसका चयन करना है। सृष्टि को विनिष्ट कर दिया जाये अथवा कायम रखा जाये। इस मानव शरीर में अपार क्षमतायें हैं। हम जो चाहे वो कर सकते हैं। विधाता के बाद दूसरे नम्बर पर हम ही तो हैं। इन क्षमताओं का हमें सही–सही सदुपयोग करना चाहिये। ये क्षमतायें दुरुपयोग के लिये हमें नहीं मिली हैं। इसका सदुपयोग जन–कल्याण के लिये सर्वजन हिताय होना चाहिये।

प्रकृति माता हमारी इन हरकतों पर पूरी तरह से नजर रखे हुए हैं और हमें संभलने का बार–बार मौका दे रही है। अतः हम सभी को प्रकृति माता के सहयोग से सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय काम में तन–मन से जुट जाना चाहिये और अपनी सारी क्षमताओं के साथ भगवत्प्राप्ति के हेतु आगे कदम बढ़ाना चाहिये। मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है। भगवत्प्राप्ति हेतु जितने साधन होने चाहिये, सभी हमारे पास हैं। यह हमारी मूर्खता ही होगी, यदि हम हीरे–जवाहरात को छोड़कर कंकड़–पत्थर बीनने में लग जायें।

हमारे धर्म गुरुओं ने मानव शरीर को टट्टी, पेशाब का थैला और हाड़–माँस का पुतला ठहराया है। इससे प्यार करने की क्या आवश्यकता है? यह तो एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। यह सब कथन सत्संगियों को गुमराह कर रहा है, लेकिन ऐसी बात है नहीं।

यह मानवी काया तो इतना पवित्र है कि मैं क्या कहूँ? इसकी पवित्रता को समझने के लिए मुझे भगवान सूर्य की उपमा देनी पड़ेगी। यह शरीर प्राण से बना है। प्राण चर्म–चक्षुओं से नहीं देखा जाता। प्राण को चर्म चक्षु से देखता हो तो सूर्य को देखें। सूर्य प्राण पुंज है।

शरीर की बनावट को विचार करके देखने से ज्ञात होगा कि यह असंख्य अणु परमाणु के संघात से बना है। अणु–परमाणु प्राण से बने हैं। यह अणु परमाणु प्रज्ञायुक्त हैं। सभी सांस लेते हैं। इसमें चुम्बकत्व भी हैं। यह अपने को बहुत ही पवित्र रखना चाहते हैं और इनकी रूझान स्वास्थ्य की तरफ रहती है। कोई भी विजातीय वस्तु शरीर में प्रवेश करते ही उसको निकालकर बाहर फेंकने की चेष्टा में लग जाते हैं।

मान लीजिए शरीर में कहीं काँटा (छोटा सा) चुभ गया तो शरीर वहाँ दर्द पैदा करके काँटा निकालेगा ही। जब तक काँटा नहीं निकलेगा, तब तक शरीर को चैन कहाँ?

मान लीजिये एक मच्छर मलेरिया का एक कीटाणु शरीर में प्रवेश कर गया। वह कीटाणु शरीर के लिए विजातीय द्रव्य है। इसको खून में से निकालने के लिए शरीर बुखार पैदा करेगा एवं पसीने के रास्ते उक्त विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकाल फेंकेगा। जब तक शरीर स्वच्छ एवं स्वस्थ नहीं होगा, तब तक बुखार नहीं जायेगा। दवा दारू से असंगत छेड़खानी करने से टायफाइड भी बन सकता है।

मानव शरीर की गति या यों कहिए प्रकृति के नियमों को मानव आज के युग में भूल ही गया है एवं इतना नासमझ बन बैठा है कि समझाए नहीं समझता। देखिए मानव का कृत्य।

माँ के गर्भ से शिशु जन्म लेते ही उनके मुँह में विजातीय द्रव्य शहद, जन्मघुट्टी डाली जाती है। यह विजातीय द्रव्य तो उक्त काँटा एवं रोग कीटाणु से भी भयंकर है। इस जहर को निकालने के लिए शरीर की रक्षाकारी यन्त्रों, टोन्सिल, पाक स्थली, लीवर, प्लीहा, क्लोम यन्त्र, छोटी आँत, बड़ी आँत, किडनी, चमड़ी के रोम कूप, फेफड़े, हृदय इन सबको सक्रिय होना पड़ेगा। जिस यन्त्र की जितनी क्षमता है, उसी हिसाब से उक्त जहर को अपनी-अपनी प्रक्रिया से शरीर से बाहर निकालेगा। लीवर सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण यन्त्र है। यह उक्त जहर को खाद्य वस्तु से खींचकर अपनी थैली में रख लेता है। उस जहर को हम पित्त कहते हैं। यह पित्त इतना भयंकर जहर है कि अगर खून में मिल जाये तो शिशु की तत्क्षण मृत्यु हो जायेगी। किडनी भी कम महत्त्वपूर्ण यन्त्र नहीं है। यह तो शिशु के रक्त में से बचा हुआ जहर को छानकर पेशाब के रास्ते निकाल देगी। अगर किडनी उक्त जहर को खून में से नहीं छाने तो शिशु कदापि नहीं बच सकता।

इस प्रकार जब जन्मघुट्टी के भयंकर जहर के प्रभाव से शिशु को टट्टी लग जाती है, तब माँ अपने स्तन से दूध पिलाती है, जो कि उतना भयंकर नहीं है। शिशु अगर नहीं पीना चाहता है तो माँ उस शिशु के साथ जबरदस्ती करती है। कभी-कभी तो शिशु उल्टी भी कर देता है। इस प्रकार शिशु धीरे-धीरे भोजन के नशे का आदी बन जाता है। भोजन नहीं मिलने से रोता है।

जैसे बीड़ी, सिगरेट, भाँग, गांजा, चरस, चाय, शराब इत्यादि पहले पीने में दिक्कत होती है, लेकिन जब अभ्यास हो जाता है, तब इसके बिना नहीं रहा जाता, नित्य अभ्यास के कारण।

मानव इस विषय पर मनन करता ही नहीं तथा जीवन भर रोगी बना रहता है और 50 से 100 के भीतर संसार की लीला रूपी जहर डालता रहता है और प्रकृति माँ उसके जहर को शरीर के बाहर निकालती रहती है। इसी को हम जीवन जीना कहते हैं। हमारी औषधि विज्ञान ने लोगों को इस प्रकार गुमराह कर दिया है कि कोई अगर उनको समझाने की चेष्टा करता है तो उसको पागल ठहराया जाता है। इसी को हम कहेंगे कि कुएँ में भांग पड़ गयी।

आज माताओं को भारतीय गृह विज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। अगर हमारे भारत की माताएँ उक्त गृह विज्ञान एवं भारतीय योग विज्ञान को समझ लें तो आज हमारी यह दुर्दशा नहीं होगी। हम देव मानव स्तर के बनकर हजारों वर्ष जीते हुए अपना कल्याण तो कर ही लेते अपितु संसार का भला करते हुए अपना कर्तव्य पूरा करके जीवन मुक्त होकर आनन्द से विचरण करते रहेंगे।

मानव शरीर जन्म के समय बहुत ही पवित्र था। इसका एक-एक परमाणु ईश्वर जैसा पवित्र और प्रज्ञावान् था, लेकिन भोगी, अज्ञानी के घर में जन्म लेने के कारण संग दोष से दूषित होकर आज इस दयनीय दशा को प्राप्त हो गया।

शहद, जन्मघुट्टी, माँ का दूध शिशु के शरीर में प्रवेश करने से धीरे-धीरे इनके एक-एक परमाणु पर काई के रूप में आवरण चढ़ जाता है (जिसको हम अन्नमय कोष कहते हैं) इस आवरण के कारण परमाणुओं का चुम्बकत्व घट जाता है और वह ब्रह्माण्डीय चेतना (ईश्वर) के कम्पन को पकड़ नहीं पाता। इस प्रकार शिशु के मस्तिष्क के अणु परमाणु पहले जड़ता को प्राप्त होते हैं; क्योंकि शिशु के मुखमण्डल पर स्थित पाँचों साइनस के परमाणु सर्वप्रथम काई युक्त होकर जड़ता को प्राप्त होते हैं।

जब ईश्वर के कम्पन को पकड़ नहीं सका तो फिर ज्ञान कहाँ से आयेगा और धीरे-धीरे मस्तिष्क के 95 प्रतिशत परमाणु निष्क्रिय होकर केवल 5 प्रतिशत ही काम करते हैं। इस प्रकार शिशु बड़ा होकर अज्ञान के गर्त में चला जाता है। अब माता-पिता इस बच्चे को सांसारिक शिक्षा देकर इसका ब्रेन वाश कर देते हैं। स्कूल-कॉलेज में तो भोग मार्ग की शिक्षा के अलावा कुछ और शिक्षा मिलती ही नहीं। जवानी के पश्चात् जब होश आता है, तब सोचता है कि मैं अध्यात्म के रास्ते पर जाऊँ। इसलिए सन्तों के सत्संग में जाकर उनके प्रवचन सुनता है। पल्ले कुछ पड़ता नहीं। कारण मस्तिष्क काम करता नहीं। बूढ़े होकर मर जाता है, सन्तों के सत्संग करते-करते। इस प्रकार कोरे के कोरे ही रह जाता है, फिर जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।

देखा आपने माँ की एक छोटी सी गलती के कारण जीव का कितना भारी अनर्थ हो जाता है। इस पाप के भागीदार कौन हो सकते हैं? विचार करें। हम एक चींटी मारने को पाप समझते हैं और यह तो एक जीव है, जिसको मनुष्य शरीर मिला है, उसका सत्यानाश कर देना कितना बड़ा भारी पाप है।

उपरोक्त विवरण से यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि मानव शरीर कितना पावन, पवित्र, सुसंस्कृत और निर्मल है। इसलिए तो कहा गया है कि मानव शरीर बिल्कुल अद्भुत और अनुपम है। इतना सुन्दर अनुपम शरीर हमें मिला है, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं। सन्त तुलसीदासजी ने तो कह भी दिया है-"सुर दुर्लभ मानुष तन पावा" फिर ऐसे सुर दुर्लभ मानव शरीर पाकर हम इसका सदुपयोग न कर दुरुपयोग ही अधिकतर करते हैं। हम सब परमपिता परमात्मा की प्रिय सन्तान हैं और उस परमपिता परमात्मा की प्रिय सन्तान होने के कारण उनके दैवीय गुण हमें भी प्राप्त हैं। परमात्मा दयालु, करुणामय, ममतामय समस्त प्राणियों का सम्भाव से देखने वाला सबकी भोजन, पानी और सुरक्षा की व्यवस्था करने वाला है। फिर हम ऐसा क्यों नहीं कर रहे? हम सामर्थ्यवान् हैं, बुद्धिमान हैं, सर्वगुण सम्पन्न भी हैं, फिर असुर भाव से विभूषित होकर असुरता क्यों दिखा रहे हैं? किसी की अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु हत्या कर देना, बेघर कर देना, बलात्कार आदि कार्य उस परमपिता परमात्मा की सन्तान होकर भी ऐसा दुराचरण क्यों करते हैं?

इतना सुन्दर मानव शरीर पाकर हमें सेवा भाव में जुट जाना चाहिये और धर्मानुसार कार्य सम्पादन करते हुए भगवद् प्राप्ति की ओर आगे बढ़ना चाहिये, इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

गतांक से आगे–

बज्रांगी हनुमान

(दशम् सर्ग)

लेखकः ओंकार सिंह 'विभाकर', उमरा हलियापुर, जिला–सुल्तानपुर (उ0 प्र0)

तेरे द्वारा राजद्रोह जो सुना गया था, क्या सच था।
राष्ट्रेद्धार, प्रतीक्षा थी, अब समय आ गया, नहीं अपच था॥
अब पथ्य वचन को श्रवण करो, हे राक्षसेन्द्र मैं कहता हूँ।
मैं सुग्रीव सन्देशा लाया, कुशल–क्षेम सब कहता हूँ॥

सरयू तट बसी अयोध्या है, गुण भूषण राजा दशरथ हैं।
उनके ही धर्मज रामचन्द्र, पितु आज्ञा आये वन–पथ हैं॥
संग भ्रातृ भक्त लक्ष्मण भाई, पतिव्रता विदेह कुमारी थीं।
चित्रकूट से पंचवटी में, वे अपनी कुटी संवारी थीं॥

वन में वैदेही लोप हुयीं, संसार इसे है जान रहा।
सीता को दोनों खोजते, पहुँचे ऋष्यमूक प्रवास रहा॥
सुग्रीव बन गये परम मित्र, 'सीता की खोज' प्रतिज्ञा की।
तब राम हने हैं बाली को, किष्किन्धा राज्य सुरक्षा की॥

अब सुनो–सुनो नर शार्दूल ! यदि कहो कि सीता नहीं यहाँ।
मैंने सीता को देख लिया, था दुर्लभ मेरा कर्म यहाँ॥
होकर विनम्र श्रीराम पास, यदि नहीं करो सीता अर्पण।
सच राम ले जायेंगे सीता, फिर होगा तेरा ही तर्पण॥

विष युक्त अन्न को खाकर के जैसे न पचाया जा सकता।
वैसे ही सीता को लंका में, नहीं पचाया जा सकता॥
हे राक्षसेन्द्र लो समझ आज, घर में सीता–फल पाओगे।
यह पंचमुखी सर्पिणी यहाँ, विष पड़ा तुरत मर जाओगे॥

हे महाराज जो जीवन है, यह पूर्व जन्म का तपफल है।
पर नारी हरण अधर्म उत्कृष्ट से, पाओगे झट प्रतिफल है॥

यदि पाप कर्म से निर्भय हो तो हुआ नीति से राक्षस वध।
सुग्रीव–राम–मैत्री को लखि, हो गया बालि का है क्यों वध॥

हे राजन ! निज हित चिन्तन कर, सुन ऋक्ष–वानरों के सम्मुख।
प्रण किया राम ने, नाश करूं जिस खल ने हरण किया है सुमुख॥
सुन राम अहित कर इन्द्र देव, सुख कभी नहीं पा सकता है।
तो कहना क्या साधारण का, सच मार्ग नहीं पा सकता है॥

रावण ! सच तो यह जिसको तुम, सीता देवी हो समझ रहे।
वह तो तेरी है कालरात्रि, लंका के प्राणी झुलस रहे॥
लख, तेज देख वैदेही का सारी लंका है भस्म हुई।
इसलिए जानकी को लौटा श्रीराम शरण सुख बेलि बुई॥

लंका में सीता को रखकर, तुम मित्र–मंत्री–बन्धु–अर्थ।
सुत–दारा–भोग हितैषी को, क्यों नष्ट कर रहे आज व्यर्थ॥
यदि विचार तेरे मन में हो, युद्ध राम से करने का।
जीवित रहना महा कठिन है, सांसों आहें भरने का॥

सत्य और निर्भीक वचन सुनि, रावण ने आज्ञा दी वध की।
सुनकर बोले साधु विभीषण, सम्मति उचित हृदय में धधकी॥
महाराज ! इस वानर वध से, कोई लाभ नहीं होगा।
आप दण्ड यह उन्हें दीजिए, जिन्हें–इन्हें भेजा होगा॥

किन्तु दूसरों ने भेजा है? यह है साधू या असाधु है।
बोल रहा है, पराधीन है, महाराज ! यह निरपराध है॥
यदि यह मारा गया यहाँ पर, दूतकर्म कोई न करेगा।
है अयुक्त वध इसका, राजन् नीति भंग का दोष लगेगा॥

शास्त्र विहित वचनों को सुनकर, बोल उठा रावण, हे भ्राता।
ठीक कहा, तूने, वध निन्दा, उचित दण्ड जो सबको भाता॥
वानर लोगों का अति प्यारा, पावन भूषण है 'लांगूल'।
इसे जला, अपमानित होगा, समझ जायगा अपनी भूल॥

जब स्वदेश को ये जायेगा, बन्धु–मित्रगण धिक्कारेंगे।
करे बहिस्कृत निज समाज में, इसको शुद्ध करायेंगे॥

रावण आज्ञा दूतों ने 'लांगूल' खोलकर जला दिया।
उसे निकाला सभा से बाहर, दण्ड घोषणा करा दिया॥

'लांगूल' अवदाह देखकर महावीर को दुःख हुआ।
लंका के धर्मज्ञ जनों को, अरु सीता को कष्ट हुआ॥
उत्तम पावन भूषण मेरा, नष्ट किया रावण ने ज्यों।
लंका भूषण 'अशोक उपवन' को मैं नष्ट करूँगा त्यों॥

इस विचार से अवसर पाकर, आग लगा दी जाकरके।
होने लगी भस्म वह जलकर, खुशी मनाया जी भर के॥
ज्यों आवेग क्रोध का उतरा, मन में हुई आत्मनिन्दा है।
महावीर अति खिन्न हो गये, कर्म नहीं मेरा सुखदा है॥

❀❀❀

सच्ची सूचना

वह पास ही खड़ा है, पर दूर मानता है।
किस भूल में पड़ा है, कुछ भी न जानता है।
हटवाद के हटीले, हरि का न मेल होगा।
छल की कहानियों को, बस क्यों बखानता है।
सुनते कुराग तेरे, अब कान वे नहीं हैं।
फिर तान बेतुकी को, किस हेतु मानता है।
जगदीश को भुलाया, जड़ का बना पुजारी।
समझा पिसान पाया, पर धूलि छानता है।
लड़ती लड़ा रही है, अविवेकता मतों की।
पशुता प्रमाद की ही, उसमें प्रधानता है।
जिस वेद का सदा से, उपदेश हो रहा है।
उसके विचारने का, प्रण क्यों न ठानता है।
कवि शंकरादि ने भी, जिसका न अन्त पाया।
उस ब्रह्म से निराली, कुछ भी न मानता है।

❀❀❀

गतांक से आगे–

वेद चतुष्टय

लेखक: हरिदत्त शास्त्री, सिरसागंज, जिला–फिरोजाबाद (उ0 प्र0)

द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवीस्थ रूप–पूर्ण शरीर से पूर्ण साधना की जा सकती है। पूर्ण शरीर द्वारा ही आत्मा पूर्णानन्द ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। बिना शरीर की पूर्णता के पूर्णता नहीं आ सकती है। पूर्ण शरीर की स्थिति में ही आत्मा का विकास सम्भव है 3X3=9 1. पृथिवी, 2. अग्नि, 3. वायु, 4. जल, 5. अन्तरिक्ष, 6. सूर्य, 7. द्यौ, 8. चन्द्र, 9. नक्षत्र यह नौ मानव के निवास स्थान हैं। जो इन नौ के सभी प्रकार के विज्ञानों से युक्त हैं, उसे वाचस्पति कहते हैं। वाचस्पति–वसुपति वसु–पति का अर्थ है–वसुओं का पति। वसु का मूल अर्थ है वास साधना, निवास स्थान, निवास की जगह होने से 1. धन 2. आवास 3. ऐश्वर्य, 4. विज्ञान, 5. पदार्थ विद्या, 6. लावण्य 3+3 = 6 इन छ: की प्राप्ति होती है। 1. भू: 2. भुव:, 3. स्व: इन तीन से छ: साधन रूप 3X3= नौ = वसव से 9X3=27 सत्ताईस दैहिक संस्थान प्राप्त होते हैं। वेदाध्ययन कर्मवृत्त में तीन 3X3=9 नौ तार और 3X9=27 तार का यज्ञोपवीत धारण करने से सत्ताईस विकास को लाभ प्राप्त होता है।

(6)

ओ3म्–इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुर:। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्ण:।।

–(ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 63 मन्त्र 5)

ऋषि:– निध्रुवि: काश्यप। देवता– पवमानसोम। छन्द– निचृद् गायत्री, स्वर:– षड्ज:।

अग्नि ऋषि द्वारा ऋग्वेद काक प्रकाशन– इन्द्र का सम्मान बनाने वाले।

अर्थ– तुम सब अस्तिका (ऐश्वर्य) को बढ़ाते हुए, कर्मठ संसार को आर्य बनाते हुए, कृपणों को नष्ट करते रहो।

वेद मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि संसार भर को आर्य बनाओ। इसलिए कुछ आवश्यक तत्व भी बताए गये हैं, जिनके पालन से आर्यत्व का प्रचार हो सकता है। यह तत्व है– 1. आस्तिकता का प्रचार, 2. कर्मठता, 3. स्वार्थी तत्वों का विनाश।

संसार में सभी की कामना रहती है कि श्रेष्ठ बनें। आर्य किन गुणों से बनता है? इसके लिए बताया गया है कि जो मर्यादा का पालन करता है, सत्कर्मों को करता है और दुर्गुणों को छोड़ता है, वह आर्य है। **कर्तव्य माचरन् कर्म, आकर्तव्य मनाचरन्।** श्रेष्ठ कर्तव्यों का आचरण करो, कर्त्तव्यहीन आचरणमत करो।

तिष्ठति प्रकृताचारे, य: स आर्यइति स्मृत:।। वसिष्ठ स्मृति

श्रेष्ठ कर्तव्य पालन करने वाला ही आर्य है। आचार्य चाणक्य का कथन है कि ''आर्यवृत्तम्''- आर्यों के चरित्र का अनुसरण करें। ''आर्यवृत्तम्मनुतिष्ठेत्''। चाणक्य सूत्र 310

(1) मन्त्र का प्रथम कार्य है- आर्यत्व के प्रचार के लिए आवश्यक है कि जन-साधारण में आस्तिकता की भावना उत्पन्न की जाये। जब तक मनुष्य के हृदय में आस्तिकता का अभाव रहेगा, तब तक लोगों के हृदय में ईश्वर के प्रति अनुराग और निष्ठा उत्पन्न करनी है।

(2) आर्यत्व का दूसरा कर्त्तव्य है- कर्मठता, कर्मनिष्ठा कार्य संलग्नता। कर्मठता अर्थात् उद्योग ही किसी समाज, राष्ट्र को आगे बढ़ाता है। कर्तव्यनिष्ठा जागरूकता समाज का सर्वोत्तम लक्षण है।

(3) मन्त्र में तीसरी बात यह कही गई है कि आर्यत्व के प्रसार के लिए स्वार्थी तत्वों को नष्ट करना आवश्यक है। इन स्वार्थी तत्वों को अरावन् अदाता कहा गया है। स्वार्थी भावना सामाजिक और राष्ट्रहित को नष्ट कर देती है। मन्त्र में शिक्षा दी गई है कि स्वार्थी तत्वों को सर्वथा नष्ट करें।

(7)

ओ3म्- द्यौः शान्ति, अन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिः आप शान्तिः ओषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्ति, विश्वे देवा शान्ति ब्रह्मशान्तिः, सर्वँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्ति रेधि।। ओ3म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।। -यजुर्वेद अध्याय 36/ मन्त्र 17

ऋषिः- दध्यंड़ाथर्वण, देवता- ईश्वरः, छन्दः-मुरिक्शक्वरी, स्वरः धैवत।

वायु ऋषि द्वारा यजुर्वेद का प्रकाशन- शान्ति पाठ का शरीर पर विनयोग पाठ-शरीर को बलवान, पवित्र और शान्ति युक्त रखने के लिए प्रबल निर्देशन।

भावार्थ- हे प्रभो ! हमारे लिए सौ-मण्डल और अन्तरिक्ष सुख शान्ति दायक हों भू मण्डल सुख-शान्तिदायक हों जल सुखमय शान्तिदायक हों, सोमलता आदि औषधियाँ और वृक्ष वनस्पतियाँ सुख-शान्तिदायक हों, सूर्य चन्द्र आदि विश्व के सभी दिव्य पदार्थ और दिव्य शक्तियाँ सुखदायक हों जप और स्वाध्याय आदि सुखदायक हों सकल विश्व के पदार्थ और स्वयं ब्रह्म हमारे लिए सुख शान्तिदायक हों, ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ दिव्य शक्तियाँ सब कुछ हमारे लिए सुख-शान्तिदायक हों, ऐसी शान्ति हम सब को प्राप्त हो। सर्वत्र शान्ति हो, आल्हादित कर देने वाली मुझे शान्ति प्राप्त हो। विश्व भर में आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक शान्ति का साम्राज्य हो। मैं संघर्षो से जूझता हुआ भी सदा समुद्र के समान प्रशान्त और गम्भीर बना रहूँ।

''यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे''- जो ब्रह्माण्ड में हैं, वही पिण्ड शरीर में हैं। पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड में साम्य है। कहीं-कहीं वैषम्य भी है। ब्रह्माण्ड अनन्त प्रकार के हैं। पिण्ड भी अनेक प्रकार के असंख्य हैं। पिण्ड (शरीर) ब्रह्माण्ड की लघुरूप आकृति है। पिण्ड (शरीर) को समझा जा सकता है। जीव (पिण्ड) के अन्दर द्यावा, पृथिवी और अन्तरिक्ष विद्यमान है। पिण्ड (शरीर) का ज्ञान होने से ब्रह्माण्ड का

ज्ञान होता है। ब्रह्माण्ड की अनुकृति पिण्ड में और पिण्ड की अनुकृति की कन्द, मूल, फल, वनस्पति, ओषधि आदि में है। शरीर (पिण्ड) में जिस प्रकार के अंग हैं, उसी के अनुरूप संसार में ओषधि वनस्पति, कन्द, मूल-फल इत्यादि हैं।

पिण्ड (शरीर) में भी द्युलोक है। यह पिण्ड (शरीर) सिर है। पिण्ड (शरीर) में वक्षस्थल का अन्तरिक्ष लोक है। नाभि प्रदेश पिण्ड (शरीर) का पृथिवी लोक है। जिस प्रकार नेत्रों में ज्योति है, उसी प्रकार सूर्य भी ज्योति स्वरूप चमक रहा है। चलायमान नेत्र सदृश अन्तरिक्ष में सूर्य और वायु चल रहा है। जिस प्रकार पृथिवी पर नदियों में जल प्रवाह होता है, उसी प्रकार नाभि प्रदेश में मूत्रादि का प्रवाह होता है। पिण्ड (शरीर) में नदियों के सदृश नस-नाड़ियों में रक्त प्रवाह हो रहा है। इसी प्रकार समझ में आता है। कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक लघु पिण्ड (शरीर) में प्रतिबिम्बित हो रहा है। "**यत् पिण्डेतद्ब्रह्माण्डे**" जैसे शरीर में प्रक्रिया है। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में प्रक्रिया है।

वेद में यजुर्वेद के अध्याय 31 मन्त्र 12 व 13 में पुरुष सूक्त के मन्त्रों में अलंकार रूप से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। उसी प्रकार स्रष्टा की प्राण शक्तियों से ब्रह्माण्ड में अनेक पदार्थों का वर्णन किया गया है। यथा-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत्। श्रोताद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्नि रजायत। नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां ऽअकल्पयन्।

ऋषिः- नारायणः, देवता-पुरुषः, छन्दः,-अनुष्टुप् स्वरः- गान्धारः।

सृष्टिकर्त्ता की प्राप्त शक्ति से ब्रह्माण्ड में परमात्मा के मानस के मनस से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, श्रोत्र से वायु या प्राण मुख से अग्नि, नाभि से अन्तरिक्ष, शीर्ष से द्यौ, पाद से भूमि, श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुए। पिण्ड (शरीर) ब्रह्माण्ड की एक छोटी आकृति रूप है। पिण्ड शरीर का जन्म जीवन मृत्यु है तो परमात्मा के ब्रह्माण्ड में उत्पत्ति, स्थित प्रलय है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड में साम्य है। ब्रह्माण्ड से पिण्ड में और पिण्ड से कन्द-मूल-फल-औषधि-वनस्पतियों में भी, साम्यता है। ब्रह्माण्ड, पिण्ड, वनस्पति में आपसी अनुकृति है।

शान्ति कीजिए प्रभु त्रिभुवन में, शान्ति कीजिए प्रभु त्रिभुवन में॥
जल में, थल में और गगन में, अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में।
औषधि, वनस्पति, वन, उपवन में, सकल विश्व के जड़ चेतन में॥ शान्ति
ब्राह्मण के उपदेश वचन में, क्षत्रिय के द्वारा होवे रण में।
वैश्य जनों के होवे धन में, और शूद्र के होवे चरणन में। शान्ति
शान्ति राष्ट्र निर्माण सृजन में, नगर ग्राम में और भुवन में।
जीव मात्र के तन में, मन में और प्रकृति के हो कण-कण में॥ शान्ति

-(शेष अगले अंक में)

विष–चिकित्सा

लेखकः स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

शरीर में अन्य कारण द्वारा प्रविष्ट विष तथा विषप्रभावों के प्रतिहार, निवारण और नष्ट करने का नाम विषचिकित्सा है। स्थावर, जंगम और कृत्रिम भेद से विष तीन प्रकार के हैं–'स्थावर जंगम यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम्'' (सुश्रुत कल्पस्थान 2/29) स्थावर और जंगम विष तो स्वाभाविक हैं, परन्तु कृत्रिम विष संयोगज या बनाया हुआ होता है। स्वास्थ्य को विषण्ण अर्थात् अस्वस्थ बना देना सभी विषों का सामान्य कार्य है, किन्तु इनमें कृत्रिम विष ज्वर आदि रोगों कदाचित घोर संकटों और मृत्यु के कारण बनते हैं। यहाँ विषचिकित्सा में प्रायः स्थावर और जंगम विषों की चिकित्सा दर्शाई जावेगी। हां, कदाचित मृत्युकारक कृत्रिम विष का उपचार भी स्थावर विषचिकित्सा के अन्तर्गत हो जायेगा। स्थावर विष जड़ वस्तुओं का और जंगम विष सर्प आदि चेतन प्राणियों का कहाता है। स्थावर विष के दो भेद हैं–एक वनस्पतिज और दूसरा खनिज। वनस्पतिज विष वनस्पतियों के मूल, कन्द, सार, छाल, दूध, गोंद, पत्ते, फूल और फल में होता है। खनिज विष, खनि अर्थात् भूमि या पर्वत आदि के खोदने से निकलने वाला संखिया, हरिताल आदि होता है। अस्तु।

उपर्युक्त तीनों विषयों में से अब जंगम विष के सम्बन्ध में तथा उनमें भी सर्वप्रथम सर्प–काटे विष की चिकित्सा का वर्णन करते हैं–

सर्पविष–चिकित्सा–

सर्प जब किसी को काटता है तो काटते ही तुरन्त छिद्रों वाले दांतों द्वारा विष की थैली में से इंजेक्शन की भांति विष को अन्दर छोड़ देता है। वह विष पुनः रक्त के साथ हृदय में पहुंच उसे स्तब्ध कर देता है–ऐंठ देता है, साथ ही मस्तिष्क को भी जड़ बना देता है और रक्तसंचार द्वारा शरीर में व्याप्त हो जीवनकणों को नष्ट करके प्राणों को मार देता है। इत्यादि बातें विस्तार से सुश्रुत आदि ग्रन्थों में लिखी हैं। यहां तो केवल अथर्ववेद से उसकी चिकित्सा ही बतलाना ध्येय है। सर्पविष को हटाने वाले मन्त्रों एवं सूक्तों का देवता तक्षक अर्थात् सर्प है और ऋषि गरुत्मान अर्थात् गरुड़ के समान सर्पविष को निःसत्व–निर्बल करने वाला सर्पविषचिकित्सक यौगिक नाम से है। ग्रामों में सर्पविषचिकित्सक को गरुड़िया या गारुड़ी कहते भी हैं। अस्तु। सर्पविषचिकित्सा को सर्वप्रथम अथर्ववेद काण्ड 5, सूक्त 13 द्वारा यहां दर्शाते हैं–

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्निपरिणामि ते विषम्।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम्॥ 1॥

अर्थ– (वरुणः) वरणीय, सर्वश्रेष्ठ (दिवः कविः) वेदवाणी के कवि परमात्मा ने (मह्यम्) मुझमें

(हि) अवश्य (ददि:) ऐसा भारी-ऐसा उग्र तेज दिया है कि (उग्रेः-वचोभिः) उग्र वचनों से (ते) तेरे (विषम्) विष को (निरिणामि) मैं निकालता हूं-दूर करता हूं-शक्तिहीन करता हूँ। तथा (खातम्) सर्पदान्तों के गहरे घाव को (अखातम्) गहरे नहीं, किन्तु सर्पदांतों के चिह्नरूप घाव को (उत) तथा (सक्तम्) सर्प से सम्पृक्त-स्पर्श प्रभाव मात्र को (अग्रमम्) मुझ सर्पचिकित्सक ने स्ववश कर दिया है। अत: (ते) तेरा (विषम्) विष (इरा-इव धन्वन्) मरुस्थल-रेतीले स्थान में पड़े जल की भांति (निजजास) बस अब नष्ट होता है॥ 1॥

इस मन्त्र में सर्पविष तथा सर्पचिकित्सा सम्बन्धी दो बातें कहीं हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। एक तो यह है कि सर्प के दष्ट या घाव तीन प्रकार के होते हैं, 'खात, अखात, 'सक्त' इन्हीं को 'सुश्रुत' आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में क्रमशः 'सर्पित, रदित, सर्पांगाभिहत' कहा है। 'खात' अर्थात् सर्प के काटे का गहरा घाव, इस स्थिति में मांस में सर्पदांतों के गड्ढे पड़ जाना, रक्त का बाहर आ जाना, घाव का रंग नीला और उसके आस-पास सूजन हो जाना। उसे आयुर्वेद में सर्पित, अर्थात् सर्प काटे के पूरे लक्षणों वाला घाव कहा है, दूसरा 'अखात' अर्थात् गहरा घाव तो नहीं, किन्तु सर्प के दांतों का लाल, नीली, पीली, सफेद रेखाओं के रूप में चिह्न मात्र। इसे आयुर्वेद में 'रदित' अर्थात् सर्प के दांतों की रेखाओं वाला घाव कहा जाता है। तीसरा 'सक्त' अर्थात् सर्प के अंगों से स्पर्शमात्र त्वचा के ऊपर से अत्यल्प परिवर्तित रंग बिना सूजे का संसर्गचिन्ह। इसे आयुर्वेद में 'सर्पांगाभिहत' अर्थात् सर्प के अंगों से कुछ घिसर खाया स्थान कहते हैं। आयुर्वेद में उक्त सर्पित आदि सर्पदष्ट के परिभाषिक नाम इन 'खात' आदि वेदोक्त सर्पदष्ट नामों का अनुवाद मात्र हैं। दूसरी बात मन्त्र में कही है आश्वासनचिकित्सा की कि "सर्वश्रेष्ठ कविरूप परमात्मा ने मेरे अन्दर अपना ऐसा तेज दिया है जिससे मैं अपने उग्र वचनों से तेरे विष को शक्तिहीन कर देता हूँ-दूर कर देता हूँ" इसी आश्वासनचिकित्सा को मन्त्रविद्या भी कहते हैं और इसी को सवंशीकरण भी कहते हैं। इस मन्त्र में सर्पदष्ट विष को दूर करने के लिये आश्वासन चिकित्सा या मन्त्र चिकित्सा की सर्व मुख्य बात कही है, जिसका कुछ विवरण हम यहां देते हैं-

मन्त्र चिकित्सा-

हम अभी बतला लाए हैं कि 'आश्वासन चिकित्सा' को 'मन्त्रचिकित्सा' या 'मन्त्रविद्या' कहते हैं। आश्वासन से रोगी को बहुत लाभ होता है और यदि वह योग्य अधिकारी महानुभावों द्वारा दिया जावे तो औषध से भी अधिक काम करता है, मरते हुए को बचा लेता है।' सुश्रुत' में उन ऐसे मन्त्रचिकित्सकों के सम्बन्ध में कहा है कि वे महानुभाव पूर्ण सदाचारी, ब्रह्मचारी, अहिंसक तथा मादक द्रव्यों को सेवन न करने वाले साधु जीवन बिताने वाले होने चाहिये। ऐसे महानुभावों के मानसिक सद्भाव और हितवचन ही मन्त्र हैं जो रोगी को आश्वासन देते हैं कि वह नहीं मरेगा।

मन्त्रचिकित्सा या आश्वासनचिकित्सा से सर्प-काटे को आराम हो जाता है, मरने से बच जाता है, इसमें कारण है। समस्त सर्पाचार्यों का कथन है कि वर्तमान सर्पों में प्रतिशतक पचास सर्प निर्विष

और पचास विष वाले हैं, निर्विषों से मरने का कोई प्रसंग नहीं होना चाहिये, पचास विष वालों में भी पच्चीस अल्प विष के और पच्चीस अधिक विष वालों में भी अति वृद्ध, बच्चे, रुग्ण, केंचुली छोड़ते हुए, डरे हुए, नेवले के पछाड़े हुए, जल से ताड़े हुए सर्प अल्पविष वाले होते हैं। अब रहे साढ़े बारह अधिक विष वालों के भी 'खात', अखात, सक्त' या 'सर्पित रदित, सर्पांगभिहत, दष्ट'–घाव के भेद होते हैं। इनमें 'सक्त' या सर्पांगाभिहत' तो निर्विष हैं ही और 'अखात' या 'रदित' अल्पविष वाला होता है, केवल 'खात' या 'सर्पित' घाव ही अधिक विष वाला हुआ जिससे मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। इस प्रकार सर्प काटे से मरने वाले दो–चार ही हुए। ये भी तुरन्त बन्धन आदि प्रतिकार से बचाए जा सकते हैं। फिर तो सौ में केवल एक–दो ही सर्प काटे से मरने चाहिए परन्तु हो रहा है उल्टा, प्रायः मर जाते हैं, कोई कोई ही बचता है। सर्प का भय भारी है, उसके भय से मर ही जाते हैं, यह बात अगले मन्त्र में वेद ने कही है–**"भियसा नेशत्"**। इस भय को दूर करने के लिए 'आश्वासनचिकित्सा' या 'मन्त्र–चिकित्सा' की आवश्यकता है। अनेक तो ऐसे घाव भी होते हैं जो सर्प काटे के नहीं होते, किसी अन्य के काटे हुए होते हैं, किन्तु वे सर्प के समझ लिए जाते हैं। शंका से भयभीत हो, शंकाविष से विषप्रभावित होकर मनुष्य मर जाते हैं। "चरक" ने स्पष्ट लिखा है– **'दुरन्धकारे दष्टस्य केनचिद् विषशंकया। विषोद्वेगाद् ज्वरश्छर्दिर्मूर्च्छा दाहोऽपि वा भवेत्॥ ग्लानिर्मोहोऽतिसारो वाप्येतच्छङ्काविषम् मतम्। चिकितिस्तमिदं तस्य कुर्यादाश्वासनं बुधः॥** –(चरक/ सर्पविषचिकित्सा अ. 23/218–219) अर्थात् घने अन्धकार में किसी जन्तु के काटे लेने से सर्प काटे की शंका हो जाने पर विष के उद्वेग–ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह, दस्त हो जाते हैं। यह शंकाविष है, इसकी चिकित्सा 'आश्वासन' है जो बुद्धिमान् को करनी चाहिए। यह चरक का विधान है। इसी प्रकार 'सक्त' या 'सर्पांगांभिहत' घाव में भी जो निर्विष होता है, आश्वासन देना चाहिए। एवं 'अखात' या 'रदित' अल्पविषवाले घाव में कुछ कष्ट ही होता है जैसे अन्य साधारण रोगों में। उसके मन को भी आश्वासन देकर भयरहित करना चाहिए कि 'मर नहीं सकता, न मरेगा' तथा अधिक विष वाले 'खात' या 'सर्पित' में भी न घबराने का आश्वास–उत्साह भरे, रोगी में बिजली सी दौड़ा देने वाले क्रान्तिकारी शब्दों में देना चाहिए, कह देना चाहिए कि घबराना नहीं, घबराने की कोई बात नहीं, नहीं मरेगा, सर्प के काटने से कोई नहीं मरता, भय से मरता है, भय मत करो, न मरोगे, यदि मन को दृढ़ करो, सचेत रहो, भय को दूर रखो, मन में मरने का भाव रखो, तो मृत्यु दूर रहेगी। ऐसा करने से विष का प्रभाव न होगा या अल्प रहेगा। मन में जीने का उत्साह रखो, मन अन्दर की बिजली है, विषवेग से उसका वेग तीव्र है, वह हृदय तथा मस्तिष्क में विषवेग को न व्यापने देगा, किन्तु मन विषवेग की गति को प्रतिलोम कर देगा।' इत्यादि कहता हुआ मन्त्रचिकित्सक आदेश दे कि "मैं अपने प्रबल प्रभावकारी वचनों से कहता हूँ, तेरे विष को दूर कर रहा हूँ। वह दूर हो रहा है। बहुत कुछ दूर हो गया है। हां, दूर हो गया और ऐसा दूर हो गया जैसे मरुस्थली में वर्षा का जल लुप्त हो जाता है–सूख जाता है।' अस्तु॥ 1॥

यत् ते अपोदकं विषं तत् ते एतास्वग्रभम्।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते।। 2।।

अर्थ– (ते) तेरा (यत्) जो (अपोदकं विषम्) शरीर के जल-रूप रक्त में जहां तक न मिला हुआ विष है (ते तत्) उस तेरे विष को (एतासु) इन ग्रहणियों-बन्धनियों में (अग्रभम्) बांधता हूँ (ते) तेरे (उत्तमम्) उत्तम (मध्यमम्) मध्यम (उत) तथा (अवमम्) निचले (रसम्) विष को (गृह्णामि) स्ववश करता हूँ (आत्) अनन्तर (उ) ही (ते) तेरे (भियसा) भय से (नेशत्) सम्भव है नष्ट हो जावे-मर जावें॥

इस मन्त्र में चार बातें कही गईं हैं। प्रथम यह कि सर्प के काटने पर बन्धनियों से बांधना जो 'एतास्वग्रभम' से सूचित होता है। दूसरे वह बन्धन कहां बांधना, इसके सम्बन्ध में कहा है कि सर्पदष्ट (सर्प काटे के घाव) का विष जहां तक रक्त के साथ न मिला हो अर्थात् सर्पदष्ट-स्थान से कुछ अलग करके जो कि 'अपोदकम्' से लक्षित होता है। 'सुश्रुत' में दंश (काटे स्थान) से चार अंगुल ऊपर बांधने का विधान है। तीसरे कब बांधना, इसके सम्बन्ध में प्रतिभासित किया है कि तुरन्त यथासम्भव शीघ्र बांधना चाहिये जो 'आत् उ' अर्थात् अनन्तर ही कथन से सूचित होता है। कितने बन्धन बांधे जावें इस विषय में 'सुश्रुत' आदि में इसकी संख्या नहीं दी, परन्तु यहां मन्त्र में तीन बन्धन तक बांधने का भाव लिया जा सकता है क्योंकि पूर्व-मन्त्र में सर्पदष्ट घाव तीन प्रकार के कहे हैं। खात (सर्पित) अखात (रदित) सक्त (सर्पांगाभिहत) उन्हीं के के पुनः यहां उत्तम, मध्यम, अवम, विष को बांधने का वर्णन है। इससे यह तात्पर्य लिया जा सकता है कि अवम निचले अर्थात् सक्त (सर्पांगाभिहत) को एक, मध्यम अर्थात् अखात (रदित) को दो, उत्तम अर्थात् खात (सर्पित) को तीन बांधने चाहियें। इनके अतिरिक्त चौथी एक और बात विशेष महत्वपूर्ण यह लक्षित होती है कि सर्प के काटे पर बन्धन न बांध जावे तो कदाचित् वह भय से मर जावे अर्थात् सर्प का काटा जो मरता है वह उसके भय से मरता है। यह 'भियसा नेशत्' से स्पष्ट सिद्ध होता है। वास्तव में वह सर्प के विष से नहीं मरता, किन्तु सर्प के भय से मरता है। सर्प का विष मादक (नशा करने वाला) है जो हृदय और मस्तिष्क को मूर्छित कर देता और जकड़ देता है, अफीम आदि अन्य मादक विष की भांति। केवल सर्प की आकृति और फुंकार से ही भय हृदय में बैठ जाता है जो उसे मार देता है। जैसे बन्दर की घुड़की देखने में भयानक है, बड़े-बड़े बलवानों को भी डरा देती है। सर्पविष का नशा भय से अधिक चढ़ता है और भय ही मृत्यु का कारण बनता है। अस्तु। इस मन्त्र में सर्प काटे की बन्धनचिकित्सा बतलाई है। हम यहां इस पर मन्त्रानुसार कुछ प्रकाश डालते हैं।

–(शेष अगले अंक में)

मुख्य नाम है ईश का, ओमनुभूत प्रसिद्ध।
योगी जपते हैं इसे, सुनते हैं सब सिद्ध।।

शिक्षा और अध्यापक

लेखक:– चिम्मनलाल वैश्य

अध्यापक का पद संसार में सबसे ऊँचा है। नदी के सामन निर्मल, पवित्र, शांतचित्त, बिजली तुल्य तीव्र बुद्धि वाले विद्यावृद्ध तपोवृद्ध स्त्री पुरुष जिन्होंने स्वयं ब्रह्मचर्य के साथ ज्ञान प्राप्त किया हो, अध्यापक बनाने योग्य हैं। ऋग्वेद सू. 62 अ. 5 मं. 3 में लिखा है कि जिन्होंने प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा पृथ्वी से परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का सत्कार कर सत्य विद्या के आचरण को वृद्धि में धर्मपूर्वक प्रवृत्ति की है वे ही अध्यापक बनाये जाने चाहिए। सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञाता, शुभ लक्षणों से युक्त, दृढांग पुरुषार्थी एवं धार्मिक गुरुओं से ही विद्या पढ़नी उचित है।

शिक्षा मानव को मानव बनाने का एक प्रधान साधन है। दीर्घायु, बल और ज्ञान का लाभ शिक्षा के उद्‌देश्यों में है। वैदिक शिक्ष पद्धति में आचार्य को मुख्य स्थान दिया गया है। गुरु वह है जो शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को बतलाता है, ज्ञान का विकास कराता है और आचार का ग्रहण कराता है। हमारी शिक्षा पद्धति में ज्ञान और विद्या के विकास पर ही अधिक बल नहीं है अपितु इसके साथ–साथ सदाचार पर अधिक बल दिया गया है। जिस मनुष्य में सदाचार नहीं वह ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानी ही है। माता पिता से पोषण तथा साधारण शिक्षा पाकर सात आठ वर्ष की अवस्था में बालक बालिकाएं गुरुकुल में प्रविष्ट होते थे। यहां उनका उपनयन और वेदारम्भ संस्कार कराके गुरु उनको वर्णों का उच्चारण प्रारम्भ कराता था, आचार में ब्रह्मचर्य नियमों को बतलाता तथा अनुशासन में शिष्टों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, गुरुकुलीय विषयों का कैसा पालन करना चाहिये आदि का उपदेश करता था। विद्या समाप्ति तक विद्यार्थियों को गुरुकुल में ही रहना पड़ता था जो नगर से दूर स्वच्छ रमणीक स्थानों पर होते थे। धनी निर्धन सभी के बालक बालिकाएं एक से, सादा वस्त्र पहनते तथा सात्विक भोजन करते थे। साम्यवादी वातावरण में नियत दिनचर्यानुसार सबों को विद्याध्ययन करना होता था। प्रति सप्ताह में एक दिन, घोर वर्षा होने में, रोगी हो जाने पर, परिवार में बीमारी के समय, युद्ध महोत्सव, त्यौहार, देश पर आपत्ति आदि समयों में अवकाश रहता था। साधारण भाषा, चरित्रगठन, धर्म, गणित स्वास्थ्यरक्षा, भूगोल, इतिहास, युद्धविद्या आदि प्रारम्भिक आवश्यकीय विषयों का ज्ञान पूर्ण होने पर विद्यार्थियों की जिनके विषयों में विशेष रुचि दीखती थी उनको उन्हीं विषयों का पूर्णरूपेण ज्ञान कराया जाता था और स्नातक होने पर उन्हें वैसी ही उपाधि दी जाती थी।

महामुनि नारद चारों वेद, इतिहास, पुराण, तर्क, प्राकृतिक भूगोल, वेदानांवेद, पित्रय, गणित (राशि), एकायनम् नीतिविद्या ब्रह्मविद्या, देव विद्या, भूत विद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्र विद्या, सर्प विद्या, देवजनविद्या में पारंगत थे।

हमारी शिक्षा प्रणाली में ऊँचे से ऊँचे विज्ञानों की शिक्षा तथा अधिक से अधिक कलाओं के परिज्ञान का सन्निवेश था जिससे गृहस्थाश्रम में जाकर स्त्री पुरुष परमुखापेक्षी न रह स्वावलंबी हो, धन कमा, धर्मानुकूल चल, दीर्घायु, सुख और अन्त में मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होते थे।

गुरु का महत्व– यजुर्वेद अ0 7 सं. 14 में कहा है कि जो पुरुष कुमार और कुमारियों को वेद और उसके अंगों की शिक्षा देकर उनके शरीर को पुष्ट तथा इन्द्रिय, अंतःकरण और मन को शुद्ध कर सके उन (अग्नि और सूर्य के समान) विद्वानों को शिक्षक नियत करे। अज्ञान के नाश करने वाले को गुरु कहते हैं। गुरु मान्य, पूज्य और सदाशिव है। वह शास्त्रवेत्ता, तपस्वी, बुद्धिमान, लोकाचार का ज्ञाता, तत्ववेत्ता, गुणसम्पन्न, मोक्ष देने में समर्थ, सब क्रियाओं में कुशल और आत्मज्ञानी हो। धर्म के तीन स्कन्ध हैं। एक यज्ञ अर्थात् पदार्थों का सगतिकरण (क्रियाकौशल, विद्वानों का सत्कार, अग्निहोत्रादि), दूसरा ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर आचार्य के समीप निवास करना और तृतीय क्लेशों को सहन कर बहुत काल तक सर्व विद्या सम्पन्न होना। सांसारिक और आत्मिक ज्ञान का साधन गुरु ही है। गुरु की कृपा से ही निर्मल ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति होती है। विभिन्न प्रकार की शिक्षा पाने तथा भ्रम निवृत्ति के लिए गुरु किए जाते हैं। विद्यार्थियों को चरित्रवान्, जितेन्द्रिय और ज्ञानी गुरुओं के समीप अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से विद्याध्ययन करना चाहिए।

आचार्योपदेश– विद्यालय में प्रवेश होने वाले विद्यार्थियों को आचार्य उपदेश करे "हे ब्रह्मचारी तू घर से विद्या पढ़ने तथा शरीर और आत्मा की उन्नति के अर्थ इस गुरुकुल में आया है। यह सब ब्रह्मचारी तेरे भाई, मैं तेरा पिता और विद्या तेरी माता है। सदा प्रसन्नचित्त रह ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा करने के लिए सावधानी से यम (निर्वेरता, सत्यभाषण, चोरी का त्याग, वीर्यरक्षा, अपरिग्रह) और नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरापरायण) का भलीभांति साधन करता हुआ विद्या पढ़, भूमि पर शयन कर, शरीर की सजावट में समय व्यतीत न कर, स्वदेशी और स्वच्छ वस्तुओं को धारण कर, प्रातः उठ शौच जा आसन व्यायामादि कर, सात्विक भोजन कर, दिनचर्यानुसार ईश्वरोपासना, प्राणायाम और विद्याध्ययन कर, अति स्नान, अति निद्रा, अति जागरण, लोभ, मोह, भय, शोक, मद्यपान आठों प्रकार के विषयों से पृथक् रह, प्रत्येक स्त्री को अपनी मां बहिन जान। भ्रष्टाचारी ब्रह्मचारी को गुरुजन शिक्षा नहीं देते, न ऐसे को विद्या आती ही है। गुरुओं से द्रोह और कपट करने वालों को विद्या फलीभूत नहीं होती। नम्र भाव और सुशीलता के साथ मेधावी होकर कोष रक्षक की भांति विद्यारक्षक बन विद्या संग्रह कर।" ऐसा उपदेश देकर गुरुजन उत्तम शिक्ष से कुमार कुमारियों के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक ज्ञान को बढ़ाते हुए विविध प्रकार की शिक्षा दे उन्हें ऐसे समुन्नत करते थे जैसे गौ अपने नवीन बच्चे को दूध से बढ़ाती है। शिक्षा समाप्त होने पर समापवर्तन संस्कार के समय गुरु उपदेश देते हैं कि "आज तेरा ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या पढ़ने का व्रत समाप्त होता है फिर भी तू इस बात का स्मरण रखना कि यह शरीर दश इन्द्रियों का समूह है, इसकी दस युक्तियां जो उसकी विभूति हैं तप करने से उन्नति को

प्राप्त होती हैं अतएव तू कभी विषय लोलुप न होना। काम, क्रोध, लोभ, मोह से यथावत काम लेना। मैंने जो विद्या का अक्षय कोष तुझे दिया है उसको पुरुषार्थपूर्वक धनोपार्जन तथा धर्मोन्नति में व्यय करना। सदा वेदोक्त मार्ग पर चल श्रेष्ठ जीवन के साथ गृहस्थाश्रम का स्वर्गधाम बना, फिर नियम के अनुसार संसार के उपकार के लिए वानप्रस्थ और संन्यास को धारण कर मनुष्यों के हित के लिए ज्ञान का प्रचार करना। वेदों में सब विद्याओं के अंकुर वर्तमान हैं। उनके तत्वज्ञान का अनुभव कर प्राणीमात्र को उन पर चलाना। ज्ञानहीन मनुष्य तनक्षीण, मन मलीन और धनहीन होकर महाकष्ट पाते हैं। तू कभी किसी दशा में भी ईश्वर को साकार अथवा एकस्थानीय न समझना। जो ऐसा समझते हैं वे शरीर और आत्मा से निर्बल और उत्साह रहित हो जाते हैं।" इस प्रकार देश-काल और समय के अनुसार दिये गए अन्तिम उपदेश को हृदयंगम कर विद्यार्थी गुरुदक्षिणा दे विद्यालय से घर आ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।

कतिपय प्राचीन गुरु शिष्यों के नाम:– ब्रह्मा ने अग्नि-वायु आदि ऋषियों से तथा ब्रह्मा से देव, मानव तथा असुरों ने विद्या पढ़ी थी। भृगु ने वरुण से, अंगिरा तथा सनतकुमार ने अथर्व ऋषि से, सनतकुमार ने नारद ने, उद्दालक से याज्ञवल्क्य ने, मधुक से चूल ने, परशुराम ने कश्यप से, द्रोणाचार्य से कौरव पांडवों ने, द्रोणाचार्य ने अग्निवेष से विद्याध्ययन किया था। सुमन्त, वैशम्पायन के व्यास, प्रजापति के ब्रह्मा, मनु के प्रजापति, प्रजा के मनु, राजा जनक के पंचशिख तथा याज्ञवल्क्य और महाराजा दशरथ तथा भगवान राम के वशिष्ठ और विश्वामित्र गुरु थे। श्रीकृष्ण जी ने संदीपन , राजा द्रुपद ने अग्निवेष गुरुओं के समीप शिक्षा ली थी। स्वामी दयानन्द ने गुरु विरजानन्द से शिक्षा ग्रहण कर गुरु दक्षिणा में शास्त्रों का उद्धार और मतमतांतरों की अविद्या को मिटा संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करने का वचन दिया था।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पश्चिमी सभ्यता तथा शिक्षण पद्धति की नकल है। न प्राचीन समय की सी पाठशालाएं ही हैं न गुरु ही न शिष्य ही। चरित्र निर्माण, स्वास्थ्य सुधार आत्मिक-मानसिक उन्नति, वीर्यरक्षा, सदाचार, सादा जीवन, धार्मिक शिक्षा पर हमारे स्कूलों में ध्यान नहीं दिया जाता। कृषि, शिल्प, वाणिज्य, कला, गृहप्रबन्ध, उद्योग आदि क्रियात्मक शिक्षाओं का अभाव है। विद्यार्थी काल में ही बालक बालिकाएं विलासी और कामुक बन जाते हैं जिससे देश की जनता चरित्रहीन स्वास्थ्यहीन और पुरुषार्थ हीन हो धनहीन और ज्ञानहीन होती जा रही है। किताबी पठन पाठन होने से पढ़ लिख कर अधिकतर हम नौकरी की ही खोज में रहते हैं। संस्कृत का ज्ञान न होने से हमें अपनी सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान और महान अतीत का कोई भान नहीं रहा। अतएव हमें अपनी शिक्षा पद्धति को बदलकर ऐसा बनाना चाहिये जिससे हम चरित्रवान, ज्ञानवान तथा स्वावलम्बी हो सकें। विदेशों की अच्छी बातों को सीखें और दुर्गुण त्यागें तभी हमारा उद्धार होगा अन्यथा हम स्वतंत्र होने पर भी सांस्कृतिक रूप में पश्चिम के ही गुलाम और विलासी रहे आयेंगे। हमारे शिक्षक चरित्रवान, विद्वान तथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रेमी होने चाहिए जिससे विद्यार्थियों पर उनके आदर्श जीवन का प्रभाव पड़े।

अयोध्याकाण्ड सर्ग 20 श्लोक 13 में लिखा है राजा को योग्य है कि जो गुरु कार्य अकार्य को न जाने, कुमार्ग में चलें कामादि में फंस निन्दित कर्म करने लगे उसको दंड दे–

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्।।

इसके अतिरिक्त हमारे शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों प्रकार के गृहस्थ अपनी आत्मिक और धार्मिक उन्नति के लिए बहुधा निरक्षर, अज्ञानी तथा पाखंडी पण्डों, साधुओं, पुजारियों को अपना धर्मगुरु तथा कुलगुरु बनाते हैं। यह पाखंडी धूर्त साधु, वैरागी और पण्डित वेद शास्त्र ज्ञान धर्म आदि तो जानते नहीं, तिलक छाप लगा गेरुये वस्त्र रंग नशों का बाजार गर्म करते फिरते हैं। हम इतने अन्धविश्वासी और अज्ञानी हो गए हैं कि इन्हीं को सब कुछ समझ अपने धर्म, धन और चरित्र का नाश मारते हुए अपने देश और जाति को रसातल में ले जा रहे हैं। यजुर्वेद में स्पष्ट लिखा है कि जो स्वयं पवित्र, बुद्धिमान, वेदशास्त्रवेत्ता नहीं होते, वे दूसरों को भी विद्वान और पवित्र नहीं कर सकते। इसलिए हमें चाहिए कि हम इन ढोंगी, धूर्त, पाखंडी और अज्ञानी गुरुओं से दूर रह सभ्य, परोपकारी और धर्म में रत, निर्लोभी, चरित्रवान, स्वधर्म का मर्म जानने वाले पवित्रात्मा साधुओं एवं ब्राह्मणों को अपना धर्म गुरु बनायें। उनसे श्रद्धा भक्ति पूर्वक अपने घर के समस्त संस्कार करायें तथा धर्मोपदेश लें जिससे हम अपने वास्तविक धर्म कर्म को समझ चरित्रवान, सदाचारी, सुसंस्कारी बन सकें। ❁

सद्‌गुरु–गौरव

जिसमें सत्य सुबोध रहेगा, कौन उसे सद्‌गुरु न कहेगा।
जो विचार विचरेगा मन में, अर्थ बसेगा वही वचन में।
भेद न होगा कर्म–कथन में, तीनों में रस एक बहेगा।
सद्‌गुण–गण–गौरव तोलेगा, पोल कपट–छल की खोलेगा।
जय प्रमाण–प्रण की बोलेगा, मार मार भट की न सहेगा।
मोह–महासुर से न डरेगा, कुटिलों में ऋजु भाव भरेगा।
उन्नति का उपदेश करेगा, गैल अधोगति की न गहेगा।
धर्म सुधार अधर्म तजेगा, योग सिद्ध शुभ साज सजेगा।
शंकर को धर ध्यान भजेगा, दुःख हुताशन में न दहेगा।
कौन उसे...............

गतांक से आगे–

कर्म में नीति–अनीति का विचार

लेखक:– आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

मानव जीवन के आदिम काल से इसका विचार होता आया है। और होता भी रहेगा। मानवजीवन में किसी विषय की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। इन्द्रियों का व्यापार सांसारिक विषयों में बेखटके होता रहता है। उनके व्यापार खावो पियो और मौज उड़ावो के विषय में बराबर चालू रहते हैं परन्तु यह खावो पियो की सारी प्रवृत्ति निर्बाध चलने लगे तो संसार में कोई व्यवस्था ही नहीं रह जावे। इन्द्रियों की व्यापार में उद्दामता समाज में अनर्गल होकर बहुत दिनों तक चलती नहीं। यदि चले तो समाज दु:ख के गड्ढे में गिरकर छिन्न–भिन्न हो जावे। इसलिए समाज धारण और आत्मनियन्त्रण, जो कि समाज का आवश्यक तत्व है, के लिये इन्द्रियों के व्यापार की उद्दामता पर चाहिये और 'न चाहिये' का यह प्रतिबन्ध ही सदाचार विज्ञान और कर्त्तव्याकर्त्तव्यविज्ञान अथवा नीतिविज्ञान का बीज है। प्राणियों की भोगात्मक प्रवृत्तियां स्वाभाविक अपने आप प्रवाहित होती रहती हैं परन्तु उनका नियन्त्रण ही महान् लाभकारी है। यह प्रवृत्तियों का नियंत्रण ही नीति का निर्धारण है।

ये प्रवृत्तियां किस आधार पर नियंत्रित की जावें और इन इन्द्रियों के प्रत्येक कर्म को किस प्रकार विचार कर, यह करने योग्य है या त्यागने योग्य है, का निर्णय करना चाहिये आदि के विषय में एक साधारण विचार सांसारिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण को लेकर सुखवाद का है। इस विचारधारा का यह सुझाव है कि जिसके करने में सुख हो वह करना चाहिये अन्य नहीं। परन्तु यह सुख अपना अथवा दूसरों का देखकर कर्तव्य का निर्णय किया जावे–यहाँ पर विचार में दो धारायें हो जाती हैं। एक पक्ष यह कहता है कि अपना सुख जिसमें हो वही कर्म करना चाहिए और दूसरे इस दिशा में आगे बढ़े हुए अनुभवी जन कहते हैं कि जिस कर्म के करने में दूसरों का सुख हो वह करना चाहिए। यदि अपने सुख का विचार करना है तो दूसरे के सुख को भी उसी तरह सोचकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार करना चाहिए। कर्तव्याकर्त्तव्य के निर्णय में वस्तुत: यह सुख क्या है? इसने भी बड़ा झगड़ा किया। पाश्चात्य विद्वानों में तो सारा झगड़ा इसी पर आधारित है। कर्त्तव्यमीमांसाशास्त्र के विषय में यह विविध धारायें खड़ी ही नहीं हो सकती थीं यदि अंग्रेजी का बह्वर्थक और लचकदार "Good" शब्द इस भाषा के कोष में न होता। इस "Good" के अनेकार्थ हैं अत: लोगों ने अपनी तरफ इसे खींच कर अपने ढंग में कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्णय का इसे आधार बनाया। क्या कर्म करना चाहिये? क्या नहीं? इसका उत्तर दिया जाता है कि जिससे अपना और जनता का भला "Good" हो। इस पद का तात्पर्य सुख है यह अर्थ लेकर एक विचार–धारा बनायी गयी कि जिसमें अपना सुख अथवा स्वार्थ हो वह कर्म करना चाहिए अन्य नहीं। इस धारा

ने यह विचार जनता को दिया कि मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी है। स्वार्थ के विना वह कुछ भी नहीं करता। स्वार्थ ही उसका उद्देश्य है और उसी की सिद्धि के लिये सब कुछ करता है। यह स्वार्थ उसका अपना सुख है और यही उसके नीति अनीति निर्धारण का मानदण्ड है। दूसरी विचारधारा ने भला "Good" का अर्थ परोपकार अर्थात् दूसरों का सुख अर्थ लिया और बतलाया कि हमारे प्रत्येक कर्म का मानदण्ड खोपकार के साथ परोपकार होना चाहिए। मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी नहीं परोपकार वृत्ति वाला है। तीसरी विचारधारा ने पूर्वोक्त पद की संगति इस प्रकार लगायी कि भला वह है जो उचित और न्याय Right हो। मनुष्य स्वभावतः विचारवान् प्राणी है अतः उसका कार्य यौक्तिक और बुद्धिसंगत होना चाहिए। यह बात उचित और न्याय विचार में ही चरितार्थ हो सकती है और वही भला कहा जा सकता है। इसके मानने वाले कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को वही कर्म करना ठीक है जो यौक्तिक Reasonable सत्य और न्याय Right और समुचित Like हो। ये सब भावों को मानवता में सन्निविष्ट कर उसे ही मानदण्ड मानते हैं अर्थात् जो कर्म मनुष्योचित हो वही करना चाहिए इतर नहीं। अन्य विचारक यह मानते हैं कि (भला) का निर्णय केवल उपकरणों से ही नहीं होता है। भला स्वयं भला ही है। उसका भलापन उसी के अन्दर है। इसलिये प्रत्येक अच्छे कर्म स्वयं अपने स्वभाव से ही भले हैं। भला वही होता है जो अनिवार्य और स्वयं उचित हो। मनुष्य को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार केवल सुख आदि पर ही नहीं करना चाहिए बल्कि प्रत्येक बुद्धियुक्त कर्म ''धर्म'' है ऐसा समझ कर करना चाहिए। कर्त्तव्याकर्त्तव्य के लिये वह अपने में ही उदिष्ट और चरितार्थ अर्थात् Duty-an-end-in-itself है। इसके अतिरिक्त एक विचारसारणी आध्यात्मिक दृष्टि वालों की है, जो इन सभी का समन्वय कर के इस लोक और परलोक सम्बन्धी मानवजीवन के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कर्तव्याकर्तव्य के निर्माण का स्तर निर्धारित करती है। इसकी घोषणा यह है कि संसार में केवल अपना स्वार्थ ही सिद्ध हो सके यह असम्भव है और सुख अपना ही हो यह किसी सीमा तक संभव होते हुए ऐकान्तिक अत्यन्त सुख भी अनुभव के विपरीत बात है। परोपकार और निष्कामभाव से कर्तव्य का पालन तथा मानवता ये सब मानवता में ही आ जाते हैं। मानवता का लक्ष्य यही संसार नहीं आगे का जीवन भी है। अतः उसके उद्देश्य की पूरी छानबीन करके नीति का निर्णय होना चाहिए। नीति का दार्शनिक स्तर पर निर्णय करते हुए विपश्चितों की साधारणतः तीन दृष्टियां हैं। ये ही सभी दार्शनिक वादों और विज्ञानों के विषय में बरती जाती हैं। ये दृष्टियां जगत् अथवा किसी वस्तु को देखने में जो दृष्टिभेद होता है उन पर आधारित हैं। पहली दृष्टि तो यह है कि इस जड़ जगत् के समस्त पदार्थ ठीक वैसे ही हैं जैसे कि वे हमें प्रत्यक्षतः दिखलायी पड़ते हैं। इससे अतिरिक्त और कोई वस्तु इसके परे उनमें नहीं है। जब हम सूर्य को देखते हैं तो उसे पांच भौतिक तत्वों का गोला मानते हैं और ऊष्णता, प्रकाश, गुरुत्व, दूरी और आकर्षण आदि गुणधर्मों की ही परीक्षा साधारणतया करते हैं। पानी और हवा को देखकर उसके गुणों पर ही विचार करते हैं। यह बाहरी विवेचन केवल आधिभौतिक विवेचन कहा जाता है। विज्ञान सम्बन्धी क्षेत्र में रसायनशास्त्र, पदार्थविज्ञानशास्त्र और

विद्युद्विद्या आदि विज्ञानों का विचार इसी प्रक्रिया से होता है। उक्त दृष्टि को छोड़कर जब यह विचार किया जाता है कि जड़ जगत् के मूल में क्या है? इनका व्यवहार केवल इनके गुण धर्मों पर ही आधारित है अथवा इनको किसी तत्व का आधार भी है तो आधिभौतिक प्रक्रिया से कुछ आगे बढ़ना पड़ता है क्योंकि उससे फिर यह कार्य नहीं चलता। इस दृष्टि के अनुसार लोग जब सूर्य पर विचार करते हैं तो यह कहते हैं कि यह भौतिक पिण्ड एक सूर्य नामी देव का अधिष्ठान है। इसी देव के कारण इस चैतन्य-शून्य गोले के सारे व्यापार-कलाप होते रहते हैं। प्रकारान्तर से यों कहना चाहिए कि जब एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति जो वज्र देहात का रहने वाला है और गाड़ी के इंजन को भली प्रकार समझता नहीं, उसे देखकर यह मानता है कि काली माई इस इंजन को चला रही है। वह यह नहीं समझता कि यह कार्य भाप का है। इसी प्रकार इस दृष्टिवाले लोग पानी, हवा, पेड़ आदि सभी पदार्थों में देव की कल्पना करते हैं। इनके अनुसार ये देव ही इन पदार्थों के व्यापार को चलाते हैं। किसी वस्तु पर बुद्धि को व्यायाम से बचाने का यह मार्ग एक अत्यन्त सरल साधन है। यदि जल को दो वायव्यों और विद्युत् के संमिश्रण का परिणाम बतलाया जावे तो अत्यन्त साधारण जन यह समझने का कष्ट नहीं करते, परन्तु जल में एक देवता है, यदि ऐसा कहा जावे तो उनकी बुद्धि में झटिति आ जाता है। यह दृष्टि आधिदैविक कही जाती है। लेकिन जड़ सृष्टि के सहस्रों जड़ पदार्थों में हजारों स्वतंत्र देवता न मान कर, मानव शरीर में रहने वाले चेतन जीवों के अतिरिक्त एक महती सर्वशक्तिशालिनी चित् शक्ति है, जो समस्त बाह्यसृष्टि का संचालन का कोई कार्य नहीं चलता, ऐसा माना जाता है तो इसे आध्यात्मिक दृष्टि कहते हैं। ये तीनों पद्धतियों विद्वानों द्वारा किसी भी दार्शनिक विचार के निर्णय में बरती जाती हैं। भारतीयों ने इनका अन्वेषण बहुत पहले किया था। योरूप में इनके आविष्कार का श्रेय आगस्ट कमटे को है। कमटे के विचारानुसार मानवी ज्ञान के विकास की चाहे वह किसी विषय का हो, प्रथम सीढ़ी आधिदैविक विचार पद्धति है और दूसरी पीढ़ी आध्यात्मिक है। सबसे परिमार्जित और उपयोगी तीसरी पीढ़ी है जो आधिभौतिक है। इसका यह विचार क्या है? इसलिये कि वह विकास के सिद्धान्त का हामी है। भारतीय परम्परा का उससे यही मतभेद है कि यह प्रथम सीढ़ी को भौतिक, दूसरी को आधिदैविक और तीसरी अन्तिम को आध्यात्मिक क्रम देती है। इसके अनुसार तीनों का ही समन्वय परमावश्यक है। इन्हीं दृष्टियों से यहाँ पर थोड़ा-सा विचार नीति-तत्व पर किया जाता है। पहला विचार आधिभौतिक सुखवादियों का है। वे कहते हैं कि आधिभौतिक दृष्टि से केवल सांसारिक युक्तिवाद को लेकर कर्म-अकर्म शास्त्र का निर्णय किया जा सकता है। इसके विवेचन के लिये अध्यात्मशास्त्र की कोई आवश्यकता नहीं और न कोई जरूरत है पारलौकिक विषयों पर आस्था रखने की। किसी कर्म के भले या बुरे होने का निर्णय उस कर्म के बाह्य परिणामों से, जो प्रत्यक्षीभूत है किया जाना चाहिए। मनुष्य संसार में जो कर्म करता है सुख के लिये करता है अथवा करता है दु:ख के निवारणार्थ। मनुष्य जीवन का परमोद्देश्य सब मनुष्यों का ऐहिक सुख ही है। जब कि सब कर्मों का अन्तिम दृश्य फल इस प्रकार निश्चित है तो फिर नीति-निर्णय का भी सच्चा मार्ग यही होना

चाहिए। लोक में भद्दी शकल की भी होती हुई यदि गाय अधिक दूध देती है तो उसे ही लोग अच्छी गाय समझते हैं। इसी प्रकार जिस कर्म के करने में सुखोपलब्धि और दुःख प्रतीकार अधिक हो उसी को नीति के विचार से श्रेष्ठ और करणीय समझना चाहिए। इस प्रकार बाह्य सुखवाद और कर्मों के बाह्यपरिणाम के सिद्धान्त को मानने में मतैक्य होते हुए भी इस विषय में मतभेद है कि जिस आधिभौतिक सुख के आधार से नैतिक कर्म-अकर्म का निर्णय किया जाता है, वह किसका है? स्वयं अपना है या दूसरे का, एक व्यक्ति का है अथवा अनेक व्यक्तियों का। संक्षेप में सब विचारों का वर्गीकरण तीन में ही किया जा सकता है। पले वर्ग का कथन यह है कि स्वार्थ ही अपना परम उद्देश्य है। परोपकार और परलोक आदि विडम्बनामात्र हैं। अध्यात्म का प्रचार और तत्सम्बन्धी शास्त्रों की रचना धूर्त लोगों ने अपने उदरदरी को ठगी से भरने के लिए की है। इस दुनियां में वस्तुतः स्वार्थ ही सत्य है और जिस उपाय से स्वार्थसिद्धि हो सके अथवा जिसके द्वारा अपने सांसारिक सुख में वृद्धि हो, उसी को न्याय, प्रशस्त और श्रेयस्कर कहना चाहिए। यह विचार चार्वाक मत से मिलता है। चार्वाक का विचार भी ऐसा ही था। इसके अनुसार शरीर भस्मीभूत होने वाला है। आत्मा इसके अतिरिक्त कोई पृथक् तत्व नहीं, वह भी शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है। इस लोक के अतिरिक्त परलोक अथवा दूसरा जन्म आदि कुछ नहीं। जब तक यह शरीर स्थित है तब तक ऋण लेकर भी आनन्द मनाना चाहिए क्योंकि मरने पर कुछ नहीं। यह प्रथम श्रेणी का विचार गर्हित और जघन्य कोटि में माना जाता है तथा इसे कर्तव्यनिर्णय में अत्यन्त त्याज्य गिना जाता है। यह निकृष्टस्वार्थ का मार्ग है।

चूंकि खुले तौर पर प्रकट स्वार्थ संसार में बहुत काल तक चल नहीं सकता, इसलिये उसे सिद्ध करने के लिये कुछ उपाय करना पड़ता है। यह अनुभव सिद्ध बात है कि बाह्य सुख प्रत्येक को इष्ट होता है तो भी जब हमारा सुख अन्यों के सुखोपलब्धि में बाधक होता है तब वे लोग हमारे इस सुख में भी बिना विघ्न उपस्थित किये नहीं रहते। इसलिए ऐसी परिस्थिति में कई अधिभूतविदों का कथन है कि यद्यपि बहुधा अपना स्वार्थ साधन ही सर्वदा उद्देश्य है फिर भी सब लोगों को अपने समान ही सहूलियत देनी पड़ती है। बिना ऐसा किये सुख मिलना संभव नहीं। इसलिये अपने सुख के लिये ही दूरदर्शिता से अन्य लोगों के सुख का भी ध्यान रखना चाहिए। यह आधिभौतिक सुखवादियों का दूसरा वर्ग है। ये लोग पूर्व वर्ग की भांति यह नहीं कहते कि अपना स्वार्थ ही केवल नीति निर्धारण का स्तर है बल्कि थोड़ा-सा दूसरे का भी स्वार्थ देखते हैं और वह भी इसलिये कि बिना ऐसा किये अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं हो सकता। ये हैं भी कट्टरबाह्यसुखवादी परन्तु थोड़ी दूरदर्शिता से कार्य लेने वाले। जहाँ पूर्व वर्ग की दृष्टि में अहिंसा का मानना कुछ अर्थ नहीं रखता है वहाँ इनकी दृष्टि में उससे यह तात्पर्य प्रकट होता है कि यदि मैं किसी को मारूंगा तो वे भी मुझे मारेंगे और मुझे परिणामतः अपने सुखों से हाथ धोना पड़ेगा, अतः यही ठीक है कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से अहिंसा का किसी सीमा तक पालन करना ही चाहिए।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

आध्यात्मिक चर्चा

लेखकः हरिशंकर अग्निहोत्री, आगरा (उ0 प्र0)

पिछली चर्चाओं में हमने समझा कि कर्म ही जीवन आदि सभी भोगों का आधार है। इसीलिए अब हम कर्म पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज आर्योद्देश्यरत्नमाला में कर्म की परिभाषा लिखते हैं– "जो मन, इन्द्रिय और शरीर से जीव चेष्टा विशेष करता है सो कर्म कहाता है। वह शुभ, अशुभ और मिश्रित भेद से तीन प्रकार का होता है।"

महाराज मनु ने कर्म दर्शन को एक ही श्लोक में समायोजित किया है–

शुभाशुभफलं कर्म नोवाग्देहसंभवम्।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः।।

(मनः वाक्–देह संभवम् कर्म) मन, वचन और शरीर से किये जाने वाले कर्म (शुभ–अशुभ–फलम्) शुभ–अशुभ फल को देने वाले होते हैं। (कर्मजा–नृणाम्) और उन कर्मों के अनुसार मनुष्यों की (उत्तम–अधम–मध्यमाः गतयः) उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन गतियाँ=जन्मवस्थायें होती हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से हमने समझा कि–

जीव (आत्मा) कर्म करता है।

जीव के कर्म करने साधन है– मन, वाणी और शरीर।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं– शुभ, अशुभ और मिश्रित।

कर्मों के आधार पर ही सभी जीवों को तीन प्रकार की गतियाँ प्राप्त होती हैं– उत्तम, मध्यम और अधम।

जीव (आत्मा) कर्म कैसे करता है? यह जानने के लिए कठोपनिषद् में उल्लेख किया है–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।

इस जीवात्मा को तुम रथी, रथ का स्वामी समझो, शरीर को उसका रथ, बुद्धि को सारथी, रथ हांकने वाला, और मन को लगाम समझो।

इन्द्रियाणि ह्यानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

मनीषियों, विवेकी पुरुषों ने इन्द्रियों को इस शरीर-रथ को खींचने वाले घोड़े कहा है, जिनके लिए इन्द्रिय-विषय विचरण के मार्ग हैं, इन्द्रियों तथा मन से युक्त इस आत्मा को उन्होंने भोग करने वाला बताया है।

अर्थात् आत्मा जब कुछ कर्म करती है तो बुद्धि द्वारा मन को प्रेरित करती है और मन इन्द्रियों से काम लेता है। मन ज्ञानेन्द्रियों से जुड़ता है तो विषयों को बुद्धि तक पहुंचाने का काम करता है और जब कर्मेन्द्रियों से जुड़ता है तो कर्म कराता है।

वर्णोच्चारण शिक्षा में एक प्रसंग है जिसमें आत्मा बोलने के लिए मन और इन्द्रियों से कैसे काम लेता है ऐसा वर्णन है।

आत्मा बुद्धया समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम्।।

जीवात्मा बुद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मन को युक्त करता, विद्युतरूप जाठराग्नि को ताड़ता, वह वायु को प्रेरणा करता है, और वायु उरः स्थान में विचरता हुआ मन्द स्वर को उत्पन्न करता है।

अर्थात् आत्मा जब कुछ कहना चाहती है तो बुद्धि पूर्वक मन को नियुक्त करती है और मन अग्नि को प्रेरित करता है और अग्नि वायु को प्रेरित करता है और वायु कण्ठ आदि स्थानों से निकलता हुआ स्वर उत्पन्न करता है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है जब वायु मुख से विचरण करता है तो मन उस समय मुख के उच्चारण स्थानों को भी व्यवस्थित करता है अर्थात् कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ और नासिका स्थानों से वायु विचरण करता है। जब हम 'क' उच्चारण करते हैं तो कण्ठ से और 'प' उच्चारण करते हैं तो ओष्ठ से ही उच्चारण होता है। इस विषय को और अच्छे से समझना चाहते हैं तो हारमोनियम के प्रयोग से समझ सकते हैं। जैसे हारमोनियम से स्वर निकलते हैं वैसे ही हमारे मुख में से स्वर निकलते हैं। हारमोनियम में एक हाथ से वायु भरी जाती है और दूसरे हाथ की अंगुलियों से स्वर निकाले जाते हैं। यह सब भी बुद्धि और मन से युक्त होकर ही सम्भव है।

यहाँ हमने समझा कि आत्मा बुद्धि से युक्त होकर मन, वाणी और शरीर से कर्म करता है। आगे हम समझेंगे आत्मा इन मन आदि साधनों से कितने प्रकार के कर्म करता है।

-(शेष अगले अंक में)

मधुर व्यवहार

जीभ में अमृत भी रहता है और जहर भी। कड़ुए असम्मान सूचक वचन बोलकर किसी को भी शत्रु बनाया जा सकता है, किन्तु यदि मिठास को स्वभाव का अंग बना लिया गया हो, तो मधुर व्यवहार से प्रभावित करके पराये को भी अपना बनाया जा सकेगा। मधुर व्यवहार का वशीकरण मंत्र जिसे भी आता है, वह दूसरों का हृदय जीत लेता है और हर किसी के मन में अपने लिए जगह बना लेता है।

अमल के बिना लोग पीछे नहीं चलते

लेखकः हनुमान प्रसाद शर्मा

एक नदी के तट पर एक अन्धा और एक लंगड़ा बैठे हुए थे। एक पथिक नदी के समीप पहुँचे और अन्धे से पूछा कि 'नदी कितनी है?'' अन्धे ने कहा–''मोटी जाँघ से।'' पथिक ने कहा–''तुमने देखी?'' कहा–''मैं तो अन्धा हूँ, मैं कैसे देखता?'' लंगड़े से पूछा–''नदी कितनी?'' लंगड़ा बोला–''कमर से।'' पथिक ने पूछा–''तुमने मँझाई?'' इसने कहा–''मैं तो लंगड़ा हूँ, कैसे मँझाता।'' यह सुन पथिक संशय में था कि नदी के पार कैसे जाऊँ? जाने नदी कितनी गहरी, कहाँ से कैसा रास्ता हो? पथिक यह विचार ही रहा था कि इतने में एक ऐसा पुरुष जो नदी के समीप ही रहता था तथा उसके आंखें और पैर दोनों थे और कई बार उसकी नदी मँझाई हुई थी आया और बेडर नदी मँझाने लगा और उस पुरुष से जो संशय में खड़ा था कहा कि–''तुम भी मेरे पीछे बेडर चले आओ।'' संशयात्मा पुरुष उसके पीछे चल पड़ा और नदी को पार कर गया।

इसी प्रकार जिनके बुद्धिरूप चक्षु हैं और कर्म करने की शक्तिरूप पग हैं और आचरण के द्वारा नदीरूप वादों को जिन्होंने मँझाया है उन्हीं के पीछे मनुष्य चल सकते हैं और जिन्होंने केवल सुना ही है और बुद्धिरूप नेत्रों से अन्धे हैं उनकी बात कोई नहीं मान सकता; और न उन्हीं की बात कोई मान सकता है जिन्होंने बुद्धिरूप चक्षुओं से देखा तो है पर जो कर्म करने रूप पगों से लंगड़े, आचरण शून्य, एवं भ्रष्टाचारी हैं। इसलिए अगर हम दुनियाँ को सुधारना या अच्छे आचरणों पर लाना चाहते हैं तो आवश्यकता है कि प्रथम हम सुधरें और हम अपने आचरणों को अच्छा बनावें। ❁

मेल से लाभ

लेखकः हनुमान प्रसाद शर्मा

एक पुरुष के चार बेटे थे। जब वह मरने लगा तो उसने अपने चारों बेटों को बुलाकर एक रस्सी दी और एक–एक बेटे से पृथक–पृथक कहा कि तुम इसे तोड़ो, पर वह किसी से न टूट सकी। फिर पिता ने कहा कि तुम चारों मिल कर इसको तोड़ो। पर वह फिर भी न टूट सकी। फिर उसने कहा अब इस रस्सी को उधेड़ डालो और इसकी एक–एक लर को तोड़ो। बच्चों ने जरा ही देर में रस्सी के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। तब पिता ने कहा कि देखो एक तिनका तुम्हें वर्षा में पानी से नहीं बचा सकता परन्तु जब तुम बहुत सा फूस इकट्ठा करके छप्पर छा लेते हो तो वह बड़ी बड़ी जल–वृष्टि से भी बचाता है। इसी प्रकार जब तक तुम आपस में मिले रहोगे तब तक कोई तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता पर जहाँ तुम अलग हुए वहाँ रस्सी की तरह टुकड़े–टुकड़े कर दिये जाओगे। ❁

आर्य वीर दल उ0 प्र0 के आह्वान पर

उ0 प्र0 के 32 स्थानों पर 200 कुण्डीय महायज्ञ एवं ऋषि चर्चा सम्मेलन के साथ 200 आर्यवीर प्रशिक्षण शिविर 2023–24

क्र0	जिला/कस्बा	दिनांक	कार्य स्थल	मुख्य व्यवस्थापक	मो0 नम्बर
1	गोण्डा	03-12-2023	शहीदे आजम भगतसिंह इन्टर	श्री विनोद आर्य	9839091545
			कालेज गोण्डा	श्री अशोक तिवारी	9452690942
				श्री चन्द्रकेतू आर्य	7080339924
2	अम्बेडकरनगर	10-12-2023	महर्षि दयानन्द इन्टर कालेज	श्री आनन्द बाबू आर्य	9331866618
	टांडा		टांडा अम्बेडकरनगर	श्री वीरेन्द्र आर्य	9415460200
3	आजमगढ़	17-12-2023	चौक बैसाली इन्टर कालेज	डॉ0 राजेन्द्र मुनि	8887540629
			आजमगढ़	श्री सन्तोष आर्य	8303810244
4	गोरखपुर	19-12-2023	जेल परिषद बिस्मिल स्मारक	श्री प्रह्लाद आर्य	9265357581
			गोरखपुर	श्री महेन्द्र सिंह आर्य	9506300132
5	गजीपुर	24-12-2023	लंका मैदान गजीपुर	श्री दिलीप वर्मा	7007372145
				श्री धर्मेन्द्र आर्य	6307761042
				श्री संतोष आर्य	8090451535
6	लखनऊ	25-12-2023	डी. ए. वी. डिग्री कालेज लखनऊ	श्री आचार्य अखिलेश मेधावी	8948510257
				डॉ0 सत्यकाम आर्य	6394922947
				श्री स्वामी वेदामृतानन्द	9450365777
				श्री विश्वव्रत शास्त्री	8318937238
7	उन्नाव	26-12-2023	रामलीला मैदान वांगरमऊ उन्नाव	श्री रामगोपाल गुप्ता	8172853617
8	मिर्जापुर	30-12-2023	जनता इन्टर कालेज मिर्जापुर	श्री सत्यनारायण आर्य	9450613423

				श्री डॉ0 झंगर सिंह	9936277676
9	बस्ती	31-12-2023	होटल बालाजी प्रकाश बस्ती	श्री ओमप्रकाश आर्य	9918300676
				श्री देवव्रत आर्य	9721071742
				श्री गरणध्वज पांडे	7619070002
10	मेरठ	07-01-2024	संजय गांधी पीजी कालेज	डॉ0 कपिल मलिक	9950287188
			सरूरपुर खुर्द मेरठ	श्री विद्यासागर आर्य	6395051413
11	मुजफ्फरनगर	12-01-2024	ऋषि भूमि इन्टर कालेज	श्री गौरव आर्य	8923244072
			मुजफ्फरनगर	आचार्य संदीप आर्य वैदिक	9720219952
12	कन्नौज	20-01-2024	ऋषि भूमि इन्टर कालेज सौरिख	श्री उदयसिंह आर्य	9452337124
			कन्नौज	श्री अवधेश गुप्ता	9838161314
13	फिरोजाबाद	21-01-2024	डिवाइन इन्टर नेशनल स्कूल	श्री देवशरण आर्य	7060232323
			सिरसागंज, फिरोजाबाद	श्री नवीन शास्त्री	9758648465
14	आगरा	28-01-2024	एन. सी. वैदिक इन्टर कालेज आगरा	श्री आचार्य हरिशंकर शास्त्री	9897060822
				श्री वीरेन्द्र कनवर	9897007181
				श्री अनुज आर्य	9927533335
15	हाथरस	04-02-2024	कन्या गुरुकुल सासनी हाथरस	डॉ0 पवित्रा जी आर्य	9258040119
16	झाँसी	11-02-2024	आर्य समाज सदर बाजार झाँसी	श्री अशोक सूरी	9415055981
				श्री शिरोमणि आर्य	9519228869
17	प्रयागराज	12-02-2024	कुम्भ क्षेत्र प्रयागराज नागबासुकी	श्री प्रमोद आर्य	8299417972
			मन्दिर दारागंज	श्री राम मूरत आर्य	9936207385
18	एटा	13-02-2024	कासगंज रोड गुरुकुल एटा	श्री दिनेश बन्धु	9837632552
				श्री प्रताप आर्य	9412305098
19	सहारनपुर	25-02-2024	गुरुकुल उग्रपुर, सहारनपुर	आचार्य अरविन्द आर्य	9761784730

20	कानपुर	17-03-2024	मोतीझील मैदान कानपुर	स्वामी सुतिक्स आचार्य आनन्द आर्य डॉ0 उदयवीर आर्य	8630960463 7985268048 9044922916

(मुख्य संरक्षक)	(प्रांतीय संचालक)	(महामंत्री)	(संगठन मंत्री)	(कोषाध्यक्ष)
आचार्य स्वदेश जी	आचार्य पंकज आर्य	मा0 कृष्णपाल आर्य	डॉ0 हरिसिंह आर्य	आचार्य जितेन्द्र शर्मा

विशेष

अन्य जनपद, समाज या व्यक्ति विशेष भी महर्षि दयानन्द जी महाराज की 200 वीं जयन्ती पर 200 कुण्डीय यज्ञ का आयोजन करने का भाव रखते हैं वे प्रांतीय संचालक श्री पंकज जी आर्य से सम्पर्क कर सकते हैं। आर्यवीर दल आपका सर्वात्मना सहयोग कर कार्यक्रम को सफल बनायेगा।

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 200/- दो सौ रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 2100/- दो हजार एक सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा
I F S C Code- IOBA 0001441
'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341

दान देने हेतु- श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

ऋग्वेद ।।ओ३म्।। यजुर्वेद

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

श्री विरजानन्द ट्रस्ट, वेदमन्दिर–मथुरा में

चतुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनांक 6 दिसम्बर 2023 से 25 दिसम्बर 2023 तक

सभी धर्मप्रेमी सज्जनो!

परमपिता परमात्मा हम लोगों के माता–पिता के समान हैं। हम सब उसकी प्रजा हैं इसलिए हम सब पर वह नित्य कृपादृष्टि रखता है। जैसे अपनी सन्तानों के ऊपर माता–पिता सदैव करुणा को धारण करते हैं। वह चाहते हैं हमारी सन्तानें सदा सुखी रहे, वैसे ही परमात्मा भी सब जीवों पर कृपादृष्टि सदैव रखता है। बिना ज्ञान के हमारा कल्याण कभी सम्भव नहीं है। इसलिए सृष्टि के आदि में ईश्वर ने अपना ज्ञान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का प्रकाश चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के मन में किया फिर उन्हें सब भूगोल में वेद विद्या को फैलाया। जिनको पढ़–पढ़ा और सुन–सुना के हमारे पूर्वज ऋषि–मुनियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त किया, उसमें परम ज्ञान प्राप्त करके अपने मानव जीवन को धन्य कर गये। इसी प्रकार सबका जीवन धन्य हो इस परोपकार को ध्यान में रखकर आपके अपने श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेद मन्दिर, मथुरा में विगत 15 वर्षों से प्रतिवर्ष चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन रखा जाता है। विद्वानों के प्रवचनों से वेद–ज्ञान की प्राप्ति और साथ में यज्ञ में पवित्र सामग्री से वातावरण शुद्धि का उपाय किया जाता है। इस वर्ष भी आयोजन 6 दिसम्बर से 25 दिसम्बर 2023 तक निर्धारित किया है। धार्मिक कार्य सर्वसाधारण के कल्याण की कामना को ध्यान में रख के आयोजित किये जाते हैं। यदि उनमें सभी सज्जनों का सहयोग न हो तो उनका पूरा होना असम्भव है यदि सम्भव हो भी जाय तो सबका उपकार न होने से निरर्थक भी है। इस आयोजन की सार्थकता आप सबके ऊपर ही है क्योंकि आपके लिए है और आप सबका है। इस बात को ध्यानमें रखकर अपना दायित्व समझ कर स्वयं यजमान बनें और अन्य सज्जनों को प्रेरित कर पुण्य लाभ कमायें। कार्यक्रम प्रतिदिन दो सत्रों में चलेगा प्रातः 9.00 बजे से 12.00 बजे तक और दोपहर 2.00 बजे से 5.00 बजे तक। आप किसी भी दिन किसी भी सत्र में यजमान बन सकते हैं। यजमान बनने के इच्छुक अपनी तिथि पहले से ही लिखवा दें तो उत्तम रहेगा। यज्ञ में निरन्तर रहने वालों के लिए आवासीय व्यवस्था आश्रम में ही रहेगी।

–सम्पर्क सूत्रः 9456811519

निवेदक

(अध्यक्ष)	(मंत्री)	(कोषाध्यक्ष)
आचार्य स्वदेश	**डॉ0 प्रवीण कुमार अग्रवाल**	**दिनेशचन्द्र बंसल**

विशेषः गुरुकुल में आने के लिए मथुरा आकर वृन्दावन जाने वाले वाहनों से मसानी चौराहा पर उतरें, पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग पर मात्र 200 कदम पर वेदमन्दिर है।

सामवेद अथर्ववेद

खाये जा रहे। मृत्यु शैया इनकी तैयार है पर पदों को छोड़ने को तैयार नहीं हैं। आर्यसमाज के द्वार पर स्वार्थ का ताला जड़ के बैठे हैं कोई पावन चरित्र नौजवान आर्यसमाज में न आ जाये अन्यथा तुम्हारी कुर्सी खतरे में पड़ जायेगी। इन पापियों को हमने समाज में आर्यवीरों के विरुद्ध जहर उगलते सुना है। यद्यपि उनके इन्हीं अपराधों के कारण इनके बच्चे भी घर में इन्हें जूते मारने लगे हैं पर इन पत्थर दिलों को जरा भी चेत नहीं होता है। सबसे बड़ा मोर्चा तो आर्यवीरों को इनके विरुद्ध लड़ना पड़ता है क्योंकि प्रकट शत्रु से लड़ना सरल है लेकिन हितैषी बनकर घर में बैठे शत्रु का पहचानना व उससे लड़ना अति कठिन है लेकिन प्रशंसा आर्यवीर दल के उन वीर बालकों की है जो ऐसी विषमावस्था में भी इस वेद प्रचार के ईश्वरीय कार्य को पूर्ण निष्ठा और लगन से रात-दिन कठिन श्रम करके सफल कर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश में प्रिय पंकज आर्य के नेतृत्व में व श्री हरिसिंह आर्य, श्री राजेश आर्य आदि योग्य शिक्षकों के नेतृत्व में उल्लेखनीय कार्य हो रहा है। उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। मुरादाबाद आर्यवीर दल का सम्मेलन इन सब की कर्मठता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की 200वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में पूरे प्रदेश में 200 कुण्डीय यज्ञ के सफल आयोजन कर आर्यवीर दल उत्तर प्रदेश ने अपनी संगठन क्षमता व कार्य दक्षता का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुझे विश्वास है कि आर्यवीर दल के कर्मठ आर्यवीरों से आर्य समाजों में नवीन चेतना का संचार होगा और जो आशायें महर्षि देव दयानन्द ने इस संगठन से की थी उन्हें आर्यवीर दल पूरा करेगा।

महर्षि दयानन्द के सच्चे अनुयायियों सभी देशभक्तों, भारतीय संस्कृति के उपासकों से हमारा यही कहना है। आर्यवीर दल को अपना सर्वात्मना सहयोग देकर पुण्य के भागी बनें। संसार में शान्ति स्थापना का मार्ग प्रशस्त करें। अन्त में महाकवि शंकर के शब्दों में-

कहना चाहता हूँ।
जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगें।
जिसका साहस देख विघ्न भय संकट भागे।
सत्य सुभट की हार अनृत की जीत न होगी।
ऐसे अटल विचार सहित विचरा जो योगी।
उस दयानन्द मुनि राज का प्रकृति पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शंकर आर्य समाज का वैदिक बल गौरव बढ़े॥

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	आर्यों की दिनचर्या	30.00	नमस्ते ही क्यों	10.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	चार मित्रों की बातें	20.00	आदर्श पत्नी	10.00
योग दर्शन	150.00	भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शंकर सर्वस्व	120.00	मील का पत्थर	20.00	सच्चे गुच्छे	8.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	भ्रांति दर्शन	20.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	शान्ता	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
नित्य कर्म विधि	70.00	संध्या रहस्य	20.00	मानव तू मानव बन	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)		गीता तत्व दर्शन	20.00	गायत्री गौरव	5.00
वैराग्य दिवाकर	50.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
वैदिक संध्या विधि	50.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
दो मित्रों की बातें	50.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	पंचाग के गुलाम	5.00
दो बहिनों की बातें	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	सर्प विष उपचार	4.00
विदुर नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	15.00	चूहे की कहानी	4.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	महिला गीतांजलि	15.00	सत्यार्थ प्रकाश मेरी दृष्टि में	4.00
चाणक्य नीति	40.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	दयानन्द की दया	3.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	बाल मनुस्मृति	12.00	शंकराचार्य और मूर्ति पूजा	3.00
वेद प्रभा	30.00	ओंकार उपासना	12.00	शांति पथ	2.00
शक्ति कथा (प्रेस में)		पुराणों के कृष्ण	12.00	सुमंगली (प्रेस में)	
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	दादी पोती की बातें	10.00	बाल सत्यार्थ प्रकाश (प्रेस में)	
यज्ञमय जीवन	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00		

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2023 के लिये वार्षिक शुल्क 200/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 2100/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

कार्यालय, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि स ....

हनु न रोड, नईदिल्ली-110001 ...

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग (आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास, मथुरा (उ० प्र०) 281003
मोबा. 9759804182

Yogendra # 9927136600

मुद्रक : स्वामी, प्रकाशक, [illegible] आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर्स प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित